पंचम अध्याय

अथैवं सम्यक्चारित्राराधनां व्याख्यायेदानीं विघ्यानाङ्र:ारादीत्याद्येषणासमितिसूत्राङ्र:भूताम् ----

घ्उद्गमोत्पादनाहार: संयोग: सप्रमाणक:
अङ्र:ारभूमौ हेतुश्च पिण्डशुध्दिर्मताष्टधा[ ]

इत्यष्टप्रकारां पिण्डशुध्दिभिधातुकाम: प्रथमं तावत् पिण्डस्य संक्षेपतो विधिनिषेधुमुखेनायोग्यत्वे (न योग्यायोग्यत्वे) निर्दिशति ---

षट्चत्वारिंशता दोषै: पिण्डोऽध:कर्मणा मलै:
द्विसप्तैश्चोज्झितोऽविघ्नं योज्यस्त्याज्यस्तथार्थत: १

द्विसप्ते :-- चतुर्दशभि: द्वि: सप्तेति विगृह्यसंख्यावाङ्डो बहुगणात्इति अविघ्नं --- विघ्नानामन्तरायाणामभावे सत्यभावेन वा हेतुना अर्थत: --- निमित्तं प्रयोजनं चाश्रित्य १

इस प्रकार चतुर्थ अध्यायमें सम्यक्चारित्राराधनाका कथन करके एषणा समितिकी अंगभूत आठ प्रकारकी पिण्ड शुध्दिको कहना चाहते हैं वे आठ पिण्डशुध्दियाँ इस प्रकार हैं ---

उद्गम शुध्दि, उत्पादन शुध्दि, आहार शुध्दि, संयोग शुध्दि, प्रमाण शुध्दि, अंगार शुध्दि, धूम शुध्दि और हेतु शुध्दि

किन्तु इनके कथनसे पूर्व संक्षेपसे पिण्डकी योग्यता और अयोग्यताका विधिमुख और निषेधमुखसे निर्देश करते हैं ---

निमित्त और प्रयोजनके आश्रयसे छियालीस दोषोंसे, अध:कर्मसे और चौदह मलोंसे रहित आहार अन्तरायोंको टालकर ग्रहण करना चाहिए तथा यदि ऐसा न हो तो उसे छोड़ देना चाहिए १

विशेषार्थ --- पिण्डका अर्थ आहार है जो आहार छियालीस दोषोंसे अध:कर्मसे और चौदह मलोंसे रहित होता है वह साधुओंके ग्रहण करनेके योग्य होता हैं साधु ऐसे निर्दोष आहारको भोजनके अन्तरायोंको टालकर ही स्वीकार करते हैं उनमें सोलह उद्गम दोष, सोलह उत्पादन दोष, दस शंकित आदि दोष, चार अंगार, धूम, संयोजन और प्रमाण दोष ये सब छियालीस दोष हैं अध:कर्मका लक्षण आगे कहेंगे चौदह मल हैं यदि इनमेंसे कोई दोष हो तो साधु उस आहारको ग्रहण नहीं करतें जो नियम आहारके विषयमें है वही औषध आदिके भी सम्बन्धमें जानना चाहिए ॥ १ ॥

पिंडे उग्गम उप्पायणेसणा संयोयणा पमाणं च
इंगालधूमकारण अट्ठविहा पिंड निज्जुत्तीं ११ -- पिण्ड निर्युक्ति मूलाचार ६ २

अथोद्गमोत्पादनदोषाणां स्वरुपसंख्यानिश्चयार्थमाह ---

दातु: प्रयोगा गत्यर्थे भक्तादौ षोडशोद्गमा:
औद्देशिकाद्या धात्र्याद्या:षोडशोत्पादना यते:[२]

प्रयोगा :-- अनुष्ठानविशेषा: भक्तादौ -- आहारौषधवसत्युपकरणप्रमुखे देयवस्तुनि यते: प्रयोगा इत्येव[२]

अथापरदोषोद्देशार्थमाह ---

शङ्किताद्या दशान्नेऽन्ये चत्वारोऽङ्गारपूर्वका:
षट्चत्वारिंशदन्योऽध: कर्म सूनाङ्घ्रिहिंसनम्[३]

षट्चत्वारिंशत् पिण्डदोषेभ्योऽन्यो --- भिन्नोऽयं दोषो महादोषत्वात् सूनाङ्घ्रिहिंसनम् --- सूनाश्चुल्ल्याद्या: पञ्च हिंसास्थानानि ताभिरङ्घ्रिनां षट्जीवनिकायानां हिंसनं दु:खोत्पादनं मारणं वा अथवा शूनाश्चाङ्घ्रिहिंसनं चेति ग्रह्यम् एतेन वसत्यादिनिर्माणसंस्कारादिनिमित्तमपि प्राणिपीडनमध:कर्मैवेत्युक्तं स्यात् तदेतदध:कर्म गृहस्थाश्रितो निकृष्टव्यापार: अथवा सूनाभिरङ्घ्रिहिंसनं यत्रोत्पाद्यमाने भक्तादौ तदध :- कर्मेत्युच्यते, कारणे कार्योपचारात् तथात्मना कृतं परेण वा कारितं, परेण वा कृतामात्मनानुमतं दूरत: संयतेन त्याज्यम् गार्हस्थ्यमेतद् वैयावृत्यादिविमुक्तामातमभोजननिमित्तं यद्येतत् कुर्यात् तदा न श्रमण: किन्तु गृहस्थ: स्यात् उक्तंच ---

छज्जीवनिकायाणं विराहणोद्दावणेहि णिप्पण्णं
आधाकम्मं णेयं सयपरकदमादसंपण्णं [मूलाचार, गा. ४२४][३]

आगे उद्गम और उत्पादन दोषोंका स्वरुप तथा संख्या कहते हैं ---

यतिके लिए देय आहार, औषध, वसति और उपकरण आदि देनेमें दाताके द्वारा किये जानेवाले औदेशिक आदि सोलह दोषोंको उद्गम दोष कहते हैं तथा यतिके द्वारा अपने लिए भोजन बनवावे सम्बन्धी धात्री आदि दोषोंको उत्पादन दोष कहते हैं उनकी संख्या भी सोलह है अर्थात् उद्गम दोष भी सोलह हैं और उत्पादन दोष भी सोलह हैं उद्गम दोषोंका सम्बन्ध दातासे है और उत्पादन सम्बन्धी दोषोंका सम्बन्ध यतिसे है[२]

शेष दोषोंको कहते हैं ---

आहारके सम्बन्धमें शंकित आदि दस दोष हैं तथा इन दोषोंसे भिन्न अंगार आदि चार दोष हैं इस तरह सब छियालीस दोष हैं इन छियालीस दोषोंसे भिन्न अध:कर्म नामक दोष है चूल्हा, चक्की, ओखली, बुहारी और पानीकी घड़ोची ये पाँच सूनाएँ हैं इनसे प्राणियोंकी हिंसा अध:कर्म नामक महादोष है[३]

विशेषार्थ --- भोजन सम्बन्धी अध:कर्म नामक दोषसे यह फलित होता है कि वसति आदिके निर्माण या मरम्मत आदिके निमित्तसे होनेवाली प्राणिपीड़ा भी अध:कर्म ही है ं इसीसे अधोगतिमें निमित्त कर्मकी अध:कर्म कहते हैं, यह सार्थक नाम सिध्द होता है ं यह अध:कर्म गृहस्थोचित निकृष्ट व्यापार है ं अथवा जहाँ बनाये जानेवाले भोजन आदिमें सूनाओंके द्वारा प्राण्यिोंकी हिंसा होती है वह अध:कर्म है ं यहाँ कारणमें कार्यका उपचार है ं ऐसा भोजन स्वयं किया हो, दूसरेसे कराया हो, या दूसरेने किया हो और उसमें अपनी अनुमति हो तो मुनिको दूरसे ही त्याग देना चाहिए ं यह तो गृहस्थ अवस्थाका काम है ं यदि कोई मुनि अपने भोजनके लिए यह सब करता है तो वह मुनि नहीं है, गृहस्थ है ं

अथोद्गमोत्पादनानामन्वर्थतां कथयाति ---

भक्ताद्युद्गच्छत्यपथ्यैर्यैर्यैरुत्पाद्यते च ते ं
दातृयत्यो: क्रियाभेदा उद्गमोत्पादना: क्रमात् ं४

उद्गच्छति --- उत्पद्यते, अपथ्यै :- मार्गविरोधिभि: दोषत्वं वैषामध:कर्मांशसंभवात् ं ४
अथोद्गमभेदानामुद्देशानुवादपुर:सरं दोषत्वं समर्थयितुं श्लोकद्वयमाह ---

उद्दिष्टं साधिकं पूति मिश्रं प्राभृतकं बलि: ं
न्यस्तं प्रादुष्कृतं क्रीतं प्रामित्यं परिवर्तितम् ं५
निषिध्दाभिह्रतोद्भिन्नाच्छेद्यारोहातथोद्गमा: ं
दोषा हिंसानादरान्यस्पर्शदैन्यादियोगत: ं६

प्रादुष्कृतं --- प्रादुष्कराख्यम् ं५ अन्यस्पर्श:- पाश्वस्थपाषण्डादिबुप्ति: (-दिक्षुप्तम्) ं दैन्यादि:- आदिशब्दात् विराधकारुण्याकीर्त्यादि ं६

अथौद्देशिकं सामान्यविशेषाभ्यां निर्दिशति ---

तदौद्देशिकमन्नं यद्देवतादीनलिङ्ग्रिन: ं
सर्वपाषण्डपार्श्वस्थसाधून् वोद्दिश्य साधितम् ं७

मूलाचारमें कहा हैं --- पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवोंकी विराधना अर्थात् दु:ख देना और मारनेसे निष्पन्न हुआ आहारादि अध:कर्म हैं वह स्वकृत हो, या परकारित हो या अनुमत हो ं ऐसा भोजनदि यदि अपने लिए प्राप्त हो तो साधुको दूरसे ही त्यागना चाहिए ं ३
आगे उद्गम और उत्पादन शब्दोंको अन्वर्थ बतलाते हैं ---

दाताकी जिन मार्गविरुध्द क्रियाओंके द्वारा आहारादि उत्पन्न होता है उन क्रियाओंको क्रमसे उद्‌गम कहते हैं । और साधुकी जिन मार्गविरुध्द क्रियाओंके द्वारा आहार आदि उत्पन्न किया जाता है उन क्रियाओंको उत्पादन कहते हैं॥४॥

विशेषार्थ -- दाता गृहस्थ पात्र यतिके लिए आहार आदि बनाता है। उनके बनानेमें गृहस्थकी मार्ग विरुध्द क्रियाओंको उद्‌गम दोष कहते हैं और साधुकी मार्गविरुध्द क्रियाओंको उत्पादन दोष कहते हैं। जो बनाता है और जिसके लिए बनाता है इन दोनोंकी मार्गविरुध्द क्रियाएँ क्रमसे उद्‌गम और उत्पादन कही जाती हैं॥४॥

आगे उद्‌गमके भेदोंके नामोंका कथन करनेके साथ उनमें दोषपनेका समर्थन दो श्लोकोंसे करते हैं ---

उद्दिष्ट अर्थात् औद्देशिक, साधिक, पूति, मिश्र, प्राभृतक, बलि, न्यस्त, प्रादुष्कृत या प्रादुष्कर, क्रीत, प्रामित्य, परिवर्तित, निषिध्द, अभिहृत, उदिन्न, अच्छेद्य और आरोह ये सोलह उद्‌गम दोष हैं। इनमें हिंसा, अनादर, अन्यका स्पर्श, दीनता आदिका सम्बन्ध पाया जाता है इसलिए इनको दोष कहते हैं॥५-६॥

आगे सबसे पहले औद्देशिकका सामान्य और विशेष रुपसे कथन करते हैं ---

जो भोजन नाग-यक्ष आदि देवता, दीनजनों और जैन दर्शनसे बहिर्भूत लिंगके धारी साधुओंके उद्देशसे अथवा सभी प्रकारके पाखण्ड, पार्श्वस्थ, निर्ग्रन्थ आदिके उद्देशसे बनाया गया हो वह औद्देशिक है ॥७॥

देवता: - नागयक्षादय:। दीना:---कृपणा:। लिङ्गिन: -- जैनदर्शनबहिर्भूतानुष्ठाना: पाषण्डा:। सर्वे -- अविशेषेण गृहस्थपाषण्डादय:। साधव :-- निर्ग्रन्था:। उद्दिश्य --- निमित्तीकृत्य। सर्वाद्युद्देशेन च कृतमन्नं क्रमेणोद्देशादि (-- भेदा) च्चतुर्धा स्यात्। तथाहि --- य: कश्चिदायास्यति तस्मै सर्वस्मै दास्यामीति सामान्योद्देशेन साधितमुद्देश इत्युच्चते। एवं पाषण्डानुद्दिश्य साधितं समुद्देश:, पार्श्वस्थानादेश:, साधुश्चं समादेश इति॥७॥

अथ सधितं द्विधा लक्षयति ---

स्याद्दोषोऽधिरोधो यत्स्वपाके यतिदत्तये।
प्रक्षेपस्तण्डुलादीनां रोधो वाऽऽपचनाद्यते:॥८॥

स्वपाके --- स्वस्य दातुरात्मनो निमित्तं पच्चमाने तण्डुलादिधान्ये जले वाऽधिश्रिते । आपचनात्पाकान्तं यावत्॥८॥

अथाप्रासुकमिश्रणपूतिकसंकल्पनाभ्यां द्विविधं पूतिदोषमाह ---

पूति प्रासु यदप्रासुमिश्रं योज्यमिदं कृतम्।
नेदं वा यावदार्येभ्यो नादायीति च कल्पितम्॥९॥

विशेषार्थ -- मूलाचार (४२६ गा.) में औद्देशिकके चार भेद किये हैं -- उद्देश, समुद्देश, आदेश और समादेश ं जो कोई भी आयेगा उन सबको दूँगा, इस प्रकार सामान्य उद्देशसे साधित भोजन उद्देश है ं इसी तरह पाखण्डीके उद्देशसे बनाया गया भोजन समुद्देश है ं श्रमणोंके उद्देशसे बनाया गया भोजन आदेश है और निर्ग्रन्थोंके उद्देशसे बनाया गया भोजन समादेश है ं श्वे. पिण्डनियुक्तिमें भी ये भेद हैं ं इतना ही नहीं, किन्तु मूलाचार गा. २६ और पिण्ड निर्युक्ति गा. २३० भी समान हैं ं पिण्ड निर्युक्तिमें औद्देशिकके अन्य भी भेद किये हैं ं७

दूसरे भेद साधिकका स्वरुप दो प्रकारसे कहते हैं ---

अपने लिए पकते हुए चावल आदिमें या अदहनके जलमें घ्मैं आज मुनिको आहार दूँगाङ इस संकल्पके साथ चावल आदि डालना अध्यधिरोध नामक दोष हैं ं अथवा अन्न पकनेतक पूजा या धर्म सम्बन्धी प्रश्नोंके बहानेसे साधुको रोके रखना अध्यधिरोध नामक दोष है ं८

विशेषार्थ --- साधिका दोषका दूसरा नाम अध्यधिरोध है ं पिण्ड निर्युक्तिमें इसका नाम अध्यवपूरक है ं अपने लिए भोजन पकानेके उद्देश्यसे आगपर पानी रखा या चावल पकनेको रखे ं पीछे मुनिको दान देनेके विचारसे उस जलमें अधिक जल डालना या चावलमें अतिरिक्त चावल डालना साधिक या अध्यधिरोध दोष हैं ं अथवा भोजनके पकनेमें विलम्ब देखकर धर्मचर्चाके बहानेसे भोजनके पकनेतक साधुको रोके रखना भी उक्त दोष है ं८

दो प्रकारके पूति दोषको कहते है ---

पूति दोषके दो प्रकार हैं --- अप्रासुमिश्र और कल्पित ं जो द्रव्य स्वरुपसे प्रासुक है उसमें अप्रासुक द्रव्य मिला देला अप्रासुकमिश्र नामक प्रथम पूति दोष है ं तथा इस चूल्हेपर

१. तिकर्मक----भ. कु. च. ं

प्रासु --- स्वरुपेण प्रासुकमपि वस्तु पूति अप्रासुमिश्रम् ं अयमाद्य: पूतिभेद: ं इदं कृतं --- अनेन चुल्ल्यादिना अस्मिन् वा साधितं इदं भोजनगन्धादि ं तथाहि --- अस्यां चुल्ल्यां भोजनादिकं निष्पाद्य यावत् साधुभ्यो न दत्तं तावदात्मन्यन्यत्र वा नोपयोक्तव्यमिति पूतिकर्मकल्पनाप्रभव एक: पूतिदोष: ं एवमुदूखलदर्वीपात्रशिलास्वपि कल्पनया चत्वारोऽन्येऽभ्यूह्या ं उक्तं च ---

मिश्रमप्रासुना प्रासु द्रव्यं पूतिकामिष्यते ं
चुल्लिकोदूखलं दर्वीपात्रगन्धौ च पञ्चधा ं [ ]

गान्धोऽत्र शिला ं इदं चेति टीकामतसंग्रहार्थमुक्तम् ं तथाहि ---
घ्यावदिदं भोजनं गन्धो वा ऋषिभ्यो नादायि न तावदात्मन्यन्यत्र वा कल्पर्ते
उक्त च ---

घ्अप्पासुएण मिस्सं पासुयदव्वं तु पूतिकम्मं तु ं
चुल्ली य उखुली दव्वी भोयणगंधत्ति पंचविहं ं [मूलाचार ४२८ गा.] ं९

अथ मिश्रदोषं लक्षयति ---

बनाया गया यह भोजन जबतक साधुके न दिया जाये तबतक कोई इसका उपयोग न करे, यह कल्पित नामका दूसरा पूति दोष है॰९॰

विशेषार्थ---मूलाचारकी संस्कृत टीकामें इस दोषका स्वरुप इस प्रकार कहा है--- अप्रासुक अर्थात् सचित आदिसे मिला हुआ आहार आदि पूति दोष है॰ उसके पाँच भेद हैं---चूल्हा, ओखली, दर्वी, भोजन और गन्ध॰ चूल्हेपर भात वगैरह पकाकर पहले साधुओंको दूँगा पीछे दूसरोंको, ऐसा संकल्प करनेसे प्रात्सुक भी द्रव्य पुति कर्मसे निष्पन्न होनेसे पूति दोषसे युक्त कहा जाता है॰ इसी तरह इस ओखलीमें कूटकर अन्न जबतक ऋषियोंको नहीं दूँगा तबतक न मैं स्वयं लूँगा न दूसरोको दूँगा॰ इस प्रकार निष्पन्न प्रात्सुक भी द्रव्य पूति कहता है॰ तथा इस करछुलसे निष्पन्न द्रव्य जबतक यतियोंको नहीं दूँगा तबतक यह न मेरे योग्य है न दूसरोंके, यह भी पूति दोष है॰ तथा इस भाजनसे निष्पन्न द्रव जबतक ऋषियोंको नही दूँगा तबतक न अपने योग्य है न दूसरोंके, वह भी पूति दोष है॰ तथा यह गन्ध जबतक भोजनपूर्वक ऋषियाको न दी जाये तबतक न मै लूँगा न दूसरोंको दूँगा, इस प्रकारके हेतुसे निष्पन्न भात वगैरह पूति कर्म है॰

श्वे. पिण्डनिर्युक्तिमें पूतिकर्मके द्रव्य और भावसें दो भेद किये हैं॰ जो द्रव्य स्वभावसे गन्ध आदि गुणसे युक्त है, पीछे यदि वह अशुचि गन्धवाले द्रव्यसे युक्त हो तो उसे द्रव्य पूति कहते हैं॰ चूल्हा, ओखली, बडी करछुल ये यदि अध:कर्म दोषसे युक्त हों तो इनसे मिश्रित भोजन शुध्द होनेपर भी पुति दोषसे युक्त होता है॰ यह भाव पूति है॰ इत्यादि विस्तृत कथन है॰९॰

मिश्र दोषका लक्षण कहते हैं---

इदं वेत्याचारटी ----भ. कु. च.॰

घ्अप्पासुएण मिस्सं पासुयदव्वं तु पूतिकम्मं तु॰

चूल्लि उक्खली दव्वी भायणगंधत्ति पंचविहंङ॰ ----पिण्डशुध्दि, ९ गा.॰

पाषण्डिभिगृहस्थैश्च सह दातु प्रकल्पितम्॰

यतिम्य: प्रासुकंसिध्दमप्यन्नं मिश्रमिष्यते॰१०॰

सिध्दं---निष्पन्नम्॰१०॰

अथ कालवृध्दिहानिभ्यां द्वैविध्यमवलम्बमानं स्थूलं सूक्ष्मं च प्राभृतकंच सूचयति ---

यद्दिनादौ दिनांशे वा यत्र देयं स्थितं हि तत्॰

प्राग्दीयमानं पश्चाद्वा तत: प्राभूतकं मतम्॰११॰

दिनादौ---दिनै पक्षे मासे वर्षे च दिनाशे---पूर्वाह्णादौ स्थितं---आगमे व्यवथितम् हि---नियमेन प्रागित्यादि तथाहि---यच्छुक्लाष्टम्यां देयमिति स्थितं तदपकृष्य शुक्लपञ्चम्यां यद्दीयते, यच्च चैत्रस्य सिते पक्षे देयमिति स्थितं तदपकृष्य कृष्णे यद्दीयते इत्यादि तत्सर्व कालहानिकृतं बादरं प्राभृतकम् तथा यच्छुक्लपञ्चम्यां देयमिति स्थितं तदुत्कृष्ण शक्लाष्टम्यां यद्दीयते, यच्च चैत्रस्य कृष्णे पक्षे देयमिति स्थितं तदुत्कृष्य शुक्ले यद्दीयते इत्यादि, तत्सर्व कालवृध्दिकृतं बादरं प्राभूतकम् तथा यद् मध्या ह्ने देयमिति स्थितं

पाषाण्डी और गृहस्थोंके साथ यतियोंके भी यह भोजन मिश्र दोषसे युक्त माना जाता है[१०]

विशेषार्थ---पिण्डनिर्युक्ति (गा.२७१ आदि) में मिश्रके तीन भेद किये हैं---जितने भी गृहस्थ या अगृहस्थ भिक्षाके लिए आयेंगे उनके लिए भी पर्याप्त होगा और कुटुम्बके लिए भी, इस प्रकारकी बुध्दिसे सामान्य-से भिक्षुओंके योग्य अन्नको एकत्र मिलाकर जो पकाया जाता है वह यावदर्थिक मिश्रजात है जो केवल पाखण्डियोंके योग्य और अपने योग्य अन्न एकत्र पकाया जाता है वह साधुमिश्र है[१०]

कालकी हानि और वृध्दिकी प्राभृत दोषके दो भेद होते हैं---स्थूल और सूक्ष्म इन दोनोंका स्वरुप कहते हैं---

आगममें जो वस्तु जिस दिन, पक्ष, मास या वर्षमें अथवा दिनके जिस अंश पूर्वाह्नमें या अपराह्नमें देने योग्य कही है उससे पहले या पीछे देनेपर प्राभृतक दोष माना है[११]

विशेषार्थ---इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है---जो वस्तु शुक्लपक्षकी अष्टमीकी देय कही है उसको शुक्लपक्षकी पंचमीको देना, जो वस्तु चैत्रमासके शुक्लपक्षमें देय कही है उसे उससे पहले कृष्णपक्षमें देना, इत्यादि इस प्रकार कालकी हानि करके देना बादर प्राभृतक दोष है जो शुक्लपक्षकी पंचमीमें देय कही है उसे बढाकर शुक्लपक्षकी अष्टमीको देना तथा जो चैत्रके कृष्णपक्षमें देय है उसे बढाकर शुक्लपक्षमें देना इत्यादि इस प्रकार कालकी वृध्दि करके देना बादर प्राभृतक दोष है तथा जो मध्याह्न में देय है उसे उससे पहले पूर्वाह्नमें देना, जो अपराह्नमें देय है उसे मध्याह्नमें देना इत्यादि ये सब कालको घटाकर देनेसे सूक्ष्म प्राभृतक दोष हैं तथा जो पूर्वाह्नमें देय है उसे कालको बढाकर मध्याह्नमें देना, यह कालवृध्दिकृत सूक्ष्म प्राभृतक दोष है मूलाचारमें कहा है---

पाहुडिहं पुण दुविहं बादर सुहुमं च दुविह मेक्केक्कं
ओकस्सणमुक्कस्सण महकालोवट्टणां वड्ढी
दिवसे पक्खे मासे वास परत्तीय बादरं दुविहं
पुव्वपरमज्झवेलं परिसत्तं दुविह सुहुमं च---मूलाचार, पिण्ड. १३-१४ गा.

(तदपकृष्य पूर्वाह्ने यद्दियते, यच्चापराह्ने देयमिति स्थितं तदपकष्य मध्याह्ने यद्दीयते इत्यादि तत्सर्व कालहानिकृतं सूक्ष्मं प्राभृतकं भण्यते तथा यत् पूर्वाह्ने देयमिति स्थितं) तदुत्कृष्य मध्याह्नादौ यद्दीयते तत्सर्ब कालवृध्दिकृतं सूक्ष्मं प्राभृतकम् तथा चोक्तम्---

घ्द्वेधा प्राभूतकं स्थूलं सूक्ष्मं तदुभयं द्विधा

अवसर्पस्तथोत्सर्पः कालहान्यतिरेकतः॰

घ्परिवृत्या दिनादिनां द्विविधं बादरं मतम्॰

दिनस्याद्यन्तमध्यानां द्वेधा सूक्ष्मं विपर्ययात्॰ [ ] ॰११॰

अथ बलिन्यस्ते लक्षयति----

यक्षादिबलिशेषोऽर्चायावद्यं वा यतौ बलिः॰

न्यस्तं क्षिप्त्वा पाकपात्रात्पात्यादौ स्थापितं क्वचित्॰ १२॰

यक्षादिबलिशेषः - यक्षनागमातृकाकुलदेवतापित्राद्यर्थ यः कृतो बलिस्तस्य शेषो दत्तावशिष्टोंऽशः॰ अर्चासावद्यं - यतिनिमित्तं चन्दनोद्गालनादिः॰ पातिः - पात्रविशेषः॰ क्वचित् - स्वगृहे वा स्थाप- निकायां धृतम्॰ तच्चान्यदात्रा दीयमानं विरोधादिकं कुर्यादिति दुष्टम्॰ १२॰

प्राभृतकके दो भेद हैं - बादर और सूक्ष्म॰ इनमें- से भी प्रत्येकके दो भेद हैं - उत्कर्षण और अपकर्षण॰ उत्कर्षण अर्थात् कालवृध्दि, अपकर्षण अर्थात् कालहानि॰ दिवस, पक्ष, मास और वर्षमें हानि या वृध्दि करके देनेसे बादरके दो भेद हैं और पूर्वाह्न, अपराह्न एवं मध्याह्नकी वेलाको घटा - बढाकर देनेसे सूक्ष्म प्राभृतकके दो भेद हैं॰

पिण्डनिर्युक्ति (गा. २८५ आदि) में भी भेद तो ये ही कहे हैं किन्तु टीकामें उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है - विहार करते हुए समागत साधुओंको देखकर कोई श्रावक विचारता है - यदि ज्योतिषियोंके द्वारा बतलाये गये दिन विवाह करुँगा तो साधुगण विहार करने चले जायेंगे॰ तब मेरे विवाहमें बने मोदक आदि साधुओंके उपयोगमें नहीं आ सकेंगे॰ ऐसा सोचकर जल्दी विवाह रचाता है॰ या यदि विवाह जल्दी होनेवाला हो और साधु समुदाय देरमें आनेवाला हो तो विवाह देरसे करता है यह बादर प्राभृतक दोष है॰ कोई स्त्री बैठी सूत कातती है॰ बालक भोजन माँगता है तो कहती है - रुईकी पूनी बना लूँ तो तुमें भोजन दूँगी॰ इसी बीचमें यदि साधु आते हुए सुन ले तो वह नहीं आता है क्योंकि उसके आनेसे उसे साधुके लिए जल्दी उठना होगा और उसने जो बालकसे पूनी कातनेके पश्चात् भोजन देनेकी प्रतिज्ञा की थी उससे पहले ही भोजन देनेपर अवसर्पण दोष होता है॰ अथवा कातती हुई स्त्री बालकक भोजन माँगनेपर कहती है - किसी दूसरे कमसे उठूँगी तो तुझे भी भोजन दूँगी॰ इसी बीचमें यदि साधु आये और उसकी बात सुन ले तो लौट जाता है॰ अथवा साधुके न सुननेपर भी साधुके आनेपर बालक माँसे कहता है - अब क्यों नहीं उठती, अब तो साधु आ गये, अब तो तुम्हें उठना ही होगा, अब तो साधुके कारण हमें भी भोजन मिलेगा॰ बालकके ये वचन सुनकर साधु भोजन नहीं लेता॰ यदि ले तो अवसर्पणरू प सूक्ष्म प्राभृतिका दोष लगता है॰ इसी तरह उत्सर्पणरू प दोष भी जानना॰ ११॰

बलि और न्यस्त दोषका स्वरू प कहते हैं -

यक्ष, नाग, कुलदेवता, पितरों आदिके लिए बनाये गये उपहारमें - से बचा हुआ अंश साधुको देना बलि दोष है॰ अथवा यतिके निमित्तसे फूल तोडना आदि सावद्य पूजाका

अथ प्रादुष्कारक्रीते निर्दिशति -

पात्रादे: संक्रम: साधौ कटाद्याविष्क्रियाऽऽगते॰
प्रादुष्कार: स्वान्यगोर्थविद्याद्यै: क्रीतमाहृतम्॰ १३॰

प्रादुष्कार: अथ संक्रम: प्रकाशश्चेति द्वेधा॰ तत्र संयते गृहमायाते भाजनभोजनादीनामन्यस्थानादन्यस्थाने नयनं संक्रम:॰ कटकपाटकाण्डपटाद्यपनयनं भाजनादीनां भस्मादिनोदकादिना वा निर्माजनं प्रदीपज्वलनादिकंच प्रकाश:॰ उक्तं च -

संक्रमश्च प्रकाशश्च प्रादुष्कारो द्विधा मत:॰
एकोऽत्र भाजनादीनां कटादिविषयोऽपर:॰ [ ]

स्वेत्यादि - स्वस्यात्मन: सचित्तद्रव्यैर्वृषभादिभिरचित्तद्रव्यैर्वा प्रज्ञप्त्यादिविद्याचेष्ट-कादिमन्त्रलक्षणै: परस्य वा तैरुभयैर्द्रव्यभावैर्यथा संभवमाहृतं संयतं (- ते) भिक्षायां प्रविष्टे तां दत्वा नीतं यभ्दोज्यद्रव्यं तत् क्रीतमिति दोष: कारुण्यदोषदर्शनात्॰ उक्तं च -

क्रीतं तु द्विविधं द्रव्यं भाव: स्वकपरं द्विधा॰
सचित्तादिभवो द्रव्यं भावो द्रव्यादिकंतथा॰॰ १३॰

आयोजन बलि है॰ भोजन पकानेके पात्रसे अन्य पात्रमें भोजन निकालकर कहीं अन्यत्र रख देना न्यस्त या स्थापित दोष है॰ ऐसे भोजनको यदि रखनेवालेसे कोई दूसरा व्यक्ति उठाकर दे देवे तो परस्परमें विरोध होनेकी सम्भावना रहती है॰ १२॰

प्रादुष्कार और क्रीत दोषको कहते हैं -

साधुके घरमें आ जानेपर भोजनके पात्रोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाना संक्रम नामक प्रादुष्कार दोष है॰ साधुके घरमें आ जानेपर चटाई, कपाट, पर्दा आदि हटाना, बरतनोंको माँजना- धोना, दीपक जलाना आदि प्रकाश नामक प्रादुष्कार दोष है॰ साधुके भिक्षाके लिए प्रवेश करनेपर अपने, पराये या दोनोंके सचित्त द्रव्य बैल वगैरहसे अथवा अचित्त द्रव्य सुवर्ण वगैरहसे या विद्यामन्त्रादि रू प भावोंसे या द्रव्य भाव दोनोंसे खरीदा गया भोज्य द्रव्य क्रीत दोषसे युक्त होता है॰ १३॰

विशेषार्थ - मूलाचार (६॰१५॰१६) में कहा है -प्रादुष्कारके दो भेद हैं॰ भोजनके पात्रोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाना संक्रमण है॰ मण्डपमें प्रकाश करना प्रकाश दोष है॰ङ

क्रीतके दो भेद हैं - द्रव्य और भाव॰ दोनोंके भी दो-दो भेद हैं - स्वद्रव्य - परद्रव्य, स्वभाव परभाव॰ गाय- भैंस वगैरह सचित द्रव्य है॰ विद्या मन्त्र आदि भाव है॰ मुनिके भिक्षाके लिए प्रविष्ट होनेपर अपना या पराया सचित आदि द्रव्य देकर तथा स्वमन्त्र - परमन्त्र या स्वविद्या- परविद्याको देकर आहार खरीदकर देना क्रीत दोष है॰ इससे साधुके

तान् भ. कु. च.

घ्पादुक्कारो दुविहो संकमण पयासणा य बोधव्वो

भायणभोयणदीणं मंडवविरलादियं कमसौं

घ्कीदयणं पुण दुविहं दव्वं भावं च सगपरं दुविहं

सच्चित्तादीदव्यं विज्जामंतादि भावं चङ

अथ प्रामित्यपरिवर्तितयो: स्वरू पमाह -

उध्दारानीतमन्नादि प्रामित्यं वृध्दयवृध्दिमत्

व्रीह्यन्नाद्येन शाल्यन्नाद्युपात्तं परिवर्तितम् १४

वृध्दवृध्दिमत् इ सवृध्दिकमवृध्दिकंचेत्यर्थ: उक्तं च -

भक्तादिकमृणं यच्च तत्प्रामित्यमुदाहृतम्

तत्पुनर्द्विविधं प्रोक्तं सवृध्दिकमथेतरत् [ ]

दोषत्वं चास्य दातु: क्लेशायासधरणादिकदर्थनकरणात् ब्रीह्यन्नं इ षष्ठिकभक्तम् उपात्तं इ साधुभ्यो दास्यामीति गृहीतम् दोषत्वं चास्य दातु: क्लेशकरणात् उक्तं च -

ब्रीहिभक्तादिभि: शालिभक्ताद्यं स्वीकृतं च यत्

संयतानां प्रदानाय तत्परीवर्तमिष्यते [ ] १४

चित्तमें करुणाभाव उत्पन्न होता है पिण्ड निर्युक्ति (गा. २९९ आदि) में भी प्रादुष्करणके ये दो भेद किये हैं उनका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है - तीन प्रकारके चूल्हे होते हैं - एक घरके अन्दर जिसे बादर भी रखा जा सकता है, दूसरा बाहर जो पहलेसे बना है, तीसरा जो बाहरमें साधुके निमित्त बनाया गया है साधुको आता देखकर गृहिणी सरलभावसे कहती है - महाराज ! आप अन्धकारमें भिक्षा नहीं लेते इसलिए बाहर ही बनाया है अथवा साधुके दोषकी आशंकासे पूछनेपर गृहिणी सरलभावसे उक्त उत्तर देती है यह संक्रमण प्रादुष्करण दोष है प्रकाशके लिए दीवारमें छेद करनेपर या छोटे द्वारके बडा करनेपर या दूसरा द्वार बनवानेपर या दीपक आदि जलानेपर साधु यदि पूछे तो सरल भावसे उक्त उत्तर देनेपर साधु प्रादुष्करण्ण दोषसे दुष्ट भोजन नहीं करते क्रीत दोषका कथन भी उक्त प्रकार है अनेक दृष्टान्तोंकेद्वारा उसे स्पष्ट किया है १३

प्रामित्य और परिवर्तित दोषोंका स्वरू प कहते हैं -

मुनिको दान देनेके लिए जो अन्न आदि उधार रू पसे लिया जाता है वह प्रामित्य दोषसे युक्त है वह दो प्रकारका होता है - एक वृध्दिमत् अर्थात् जिसपर व्याजके रू पमें लौटाते समय कुछ अधिक देना

होता है और दूसरा अवृध्दिमत् अर्थात् बेव्याज ँ साँठी चावल आदिके बदलेमें शालिचावल आदि लेना परिवर्तित दोष है ँ १४ ँ

विशेषार्थ - जब किसीसे कोई अन्न वगैरह उधार लिया जाता है तो मापकर लिया जाता है इसीसे इस दोषका नाम प्रामित्य है ँ जो प्रमितसे बना है ँ प्राकृत शब्दकोशमें पामिच्चका अर्थ उधार लेना है ँ इसीसे मूलाचारके संस्कृत टीकाकारने इसे ऋणदोष नाम दिया है ँ लिखा है - चर्याके लिए भिक्षुके आनेपर दाता दूसरेके घर जाकर खाद्य वस्तु माँगता है - च तुम्हें चावल आदि वृध्दि सहित या वृध्दिरहित दूँगा मुझे खाद्य वगैरह दो ँछ इस प्रकार लेकर मुनियोंको देता है ँ यह प्रामित्य दोष है क्योंकि दाताके लिए क्लेशका कारण होता है ँ पिण्ड निर्युक्तिमें एक कथा देकर बतलाया है कि कैसे यह ऋण दाताके कष्टका कारण होता है ँ इसी तरह साधुको बढिया भोजन देनेकी भावनासे मोटे चावलके बदलेमें बढिया चावल आदि लेकर साधुको देना परावर्त दोष है ँ यह भी दाताके क्लेशका कारण होता है ँ दाताके जो कुछ जैसा भी घरमें हो वही साधुको देना चाहिए ँ १४ ँ

अथ निषिध्दं सभेदप्रभेदमाह -

निषिध्दमीश्वरं भर्त्रा व्यक्ताव्यक्तोभयात्मना ँ
वारितं दानमन्येन तन्मन्येन त्वनीश्वरम् ँ १५ ँ

भर्त्रा - प्रभुणा ँ व्यक्त: - प्रेक्षापूर्वकारी वा वृध्दो वाऽसारक्षी वा ँ आरक्षा मन्त्र्यादय: ँ सहारक्षैर्वर्त्यत इति सारक्ष: स्वामी ँ न तथाभूतो य: सोऽसारक्ष: स्वतन्त्र इत्यर्थ: ँ अव्यक्त: - अप्रेक्षापूर्वकारी वा बालो वा सारक्षो वा ँ उभय: - व्यक्ताव्यक्तरू प: ँ दानं - दीयमानमौदनादिकम् ँ तन्मन्येन -- भतरिमात्मानं मन्यमनेन अमात्यादिना ँ तद्यथा - निषिध्दाख्यो दोषस्तावदीश्वरोऽनीश्वरश्चेति द्वेधा ँ तत्राप्याद्यस्त्रेधा ँ व्यक्तेश्वरेण वारितं दानं यदा साधु गृह्णाति तदा व्यक्तेश्वरी नाम दोष: ँ यदा अव्यक्तेन वारितं गृह्णाति तदाऽव्यक्तेश्वरी नाम ँ यदैकेन दानपतिना व्यक्तेन द्वितीयेन चाव्यक्तेन वारितं गृह्णाति तदा व्यक्ताव्यक्तेश्वरी नाम तृतीय ईश्वराख्यस्य निषिध्दभेदस्य भेद: स्यात् ँ एवमनीश्वरेऽपि व्याख्येयम् ँ यच्चैकेन दीयते अन्येन च निषिध्दयते नेष्यते वा तदपि गृह्यमाणं दोषाय स्याद् विरोधापायाद्यनुषङ्गाविशेषात् ँ यत्पुन: -

अणिसिट्ठं पुण दुविहं ईस्सर णिस्सर ह णिस्सरं व दुवियप्पं ँ
पढमेस्सर सारक्खं वत्तावत्तं च संघाडं ँ [मूलाधार-गा. ४४४]

इत्यस्य टीकायां बहुधा व्याख्यान (- तं) तदत्रैव कुशलै: स्वबुध्दयाऽवतारयितुं शक्यत इति न सूत्रविरोध: शङ्क्य: ँ १५ ँ

भेद - प्रभेद सहित निषिध्द दोषको कहते हैं -

व्यक्त, अव्यक्त और उभयरू प स्वामीके द्वारा मना की गयी वस्तु साधुको देना ईश्वर निषिध्द नामक दोष है ं और अपनेको स्वामी माननेवाले किसी अन्यके द्वारा मना की गयी वस्तुका दान देना अनीश्वर निषिध्द नामक दोष है ं १५ ं

विशेषार्थ - मूलचारमें उसकी संस्कृत टीकामें आचार्य वसुनन्दीने इस दोषका नाम अनीशार्थ दिया है ं उसका व्याख्यान करते हुए उन्होंने लिखा है---इसके दो भेद हैं---ईश्वर और अनीश्वर ं अनीश अर्थात अप्रधान अर्थ जिस ओदन आदिका कारण है वह भात वगैरह अनीशार्थ है ं उसके ग्रहण जो दोष है उसका नाम भी अनीशार्थ है ं कारणमें कार्यका उपचार है ं वह अनीशार्थ ईश्वर और अनीश्वरके भेदसे दो प्रकारका है ं उस दो प्रकारके भी चार प्रकार हैं ं स्वामी दान देना चाहता है और सेवक रोकते हैं ऐसे अन्नको ग्रहण करनेसे ईश्वर नामक अनीशार्थ दोष होता है ं उसके भी तीन भेद हैं---व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त ं जो अपना अधिकार स्वयं रखता है परकी अपेक्षा नहीं करता वह व्यक्त है ं जो परकी अपेक्षा रखता है वह अव्यक्त है ं ऐसे दो व्यक्तियोंको उभय कहते हैं ं इसी तरह अनीश्वर दोषके भी तीन भेद होते हैं ं दानका स्वामी दान देना चाहे और दूसरा रोके तो ईश्वर अनीशार्थ दोष है और जो स्वामी नहीं है वह दे तो अनीश्वर अनीशार्थ दोष है ं ऐसा प्रतीत होता है कि टीकाकार प्रकृत विषयमें स्पष्ट नहीं थे ं उन्होंने अथवा करके कई प्रकारसे भेदोंकी संगतति बैठानेका प्रयत्न किया है ं पहले दोषका नाम

निषिध्दत्वेनेष्यते भ. कु. च. ं
इस्सरमह णिस्सरं च दुवि---मूलाचार ं
घ्अणिसट्ठं पुण दुविहं इस्सर मह णिस्सरं च दुवियप्पं ं
पढमिस्सर सारक्खं वत्तावत्तं च संघाडंङ ं---३ं२५

अथाभिहृतदोष व्याचष्टे ---

त्रीन् सप्त वा गृहान् पङ्क्त्या स्थितानमुक्त्वाऽन्यतोऽखिलात् ं
देशादयोग्यमायातमन्नाद्यभिहृतं यते: ं१६ं

अन्यत:---उक्तविपरीतगृहलक्षणात् स्वपरग्रामदेशलक्षणाच्च ं अभिहृतं हि द्विविधं देशाभिहृतं सर्वाभिहृतं वा ं देशाभिहृतं पुनर्द्विधा-आदृतमनादृतं च ं सर्वाभिहृतं तु चतुर्धा स्वग्रामादागतं परग्रामादागतं स्वदेशादागतं परदेशादागतं चेति ं यत्र ग्रामे स्थीयते स स्वग्राम: ं तत्र पूर्वपाटकादपरपाटकेऽपरपाटकाच्च पूर्वपाटके भोजनादेर्नयनं स्वग्रामाभिहृतम् ं प्रचुरेर्यापथदोषर्शनात् ं एवं शेषमप्युह्यम् ं तथा चोक्तम् ---

घ्देशात: सर्वतो वापि ज्ञेयं त्वभिहृतं द्विधा ं
आदृतानादृतत्वेन स्याद्देशाभिहृतं द्विधा ं
ऋजुवृत्त्य त्रिसप्तभ्य: प्राप्तं वेश्मभ्य आदृतम् ं
तत: परत आनीतं विपरीतमनादृतम् ं
स्वपरग्रामदेशेषु चतर्धाभिहृतं परम् ं

प्राक्पश्चात्पाटकानां च शेषमप्येवमादिशेत्ʼ [ ] ʼ१६ʼ

अथोभ्दिन्नाच्छेद्यदोषयो: स्वरुपं विवृणोति---

पिहितं लाञ्छितं वाज्यगुडाद्युद्घाट्य दीयतेʼ
यत्तदुभ्दिन्नमाच्छेद्यं देयं राजादिभीषितै:ʼ१७ʼ

अनीशार्थ दिया है, पीछे अथवा करके अनिसृष्ट नाम दिया हैʼ अनिसृष्टका अर्थ होता है निषिध्दʼ पं. आशाधरजीने निषिध्द नाम दिया है श्वे. पिण्डनिर्युक्तिमें भी अनिसृष्ट नाम ही हैʼ ईश्वरें द्वारा निसृष्ट किन्तु अनीश्वरके द्वारा अनिसृष्ट या अनीश्वरके द्वारा निसृष्ट और ईश्वरके द्वारा अनिसृष्ट वस्तुका ग्रहण निषिध्द नामक दोष हैʼ१५ʼ

अभिहृत दोषको कहते हैं---

पंक्तिरुपसे स्थित तीन या सात घरोंको छोडकर शेष सभी स्थानोंसे आया हुआ भोजन आदि मुनिके अयोग्य होता हैʼ उसके ग्रहण करना अभिहृत दोष हैʼ१६ʼ

विशेषार्थ---मूलाचार (ʼ१९) में प्राकृत शब्द अभिहड हैʼ संस्कृत टीकाकारने उसका संस्कृत रुप घ्अभिघटङ रखा हैʼ और इस तरह इस दोषको अभिघट नाम दिया है जो उचित प्रतीत नहीं होताʼ अभिहडका संस्कृत रुप अभिहृत या अभ्याहृत होता हैʼ वही उचित हैʼ उसीसे उसके अर्थका बोध होता हैʼ मूलाचारमें अभिहृतके दो भेद किये हैं--- देशाभिहृत और सर्वाभिहृतʼ जिस घरमें मुनिका आहार हो उस घरकी सीधी पंक्तिमें स्थित तीन या सात घरोंसे आया हुआ भोजन आदि ग्रहण योग्य होता हैʼ यदि सीधी पंक्तिके तीन या सात घरोंके बादके घरोंसे भोजनादि आया हो या सीधी पंक्तिसे विपरीत घरोंसे आया हो, या यहाँ-वहाँके घरोंसे आया हो तो वह ग्रहण योग्य नहीं होताʼ श्वे. पिण्डनिर्युक्तिमें इस दोषका नाम अभ्याहृत हैʼ और उसका स्वरुप यही हैʼ अभ्याहृतका अर्थ होता है सब ओरसे लाया गयाʼ ऐसा भोजन अग्राह्य होता हैʼ१६ʼ

आगे उभ्दिन्न और अच्छेद्य दोषका स्वरुप कहते हैं ----

जो घी, गुड आदि द्रव्य किसी ढक्कन वगैरहसे ढका हो या किसीकी नामकी मोहर आदिसे चिह्नित हो और उसे हटाकर दिया जाता है वह उद्भिन्न कहा जाता हैʼ उसमें

पिहितं ---पिधानेन कर्दमलाक्षादिना वा संवृतम्ʼ लाञ्छितं नाम बिम्बादिना मुद्रितम्ʼ दोषत्वं चास्य पिपीलिकादिप्रवेशदर्शनात् इतिʼ राजादिभीषितै:---कुटुम्बिकैरिति शेष:ʼ यदा हि संयतानां हि भिक्षाश्रमं दृष्टा राजा तत्तुल्यो वा चौरादिर्वा कुटुम्बिकान् यदि संयतानामागतानां भिक्षादानं न करिष्यथ तदा युष्माकं द्रव्यमपरिष्यामो ग्रामाद्वा निर्वासयिष्याम इति भीषयित्वा दापयति तदा तदादीयमानमाच्छेद्यनामा दोष: स्यात् ʼ उक्तं च ----

घ्संयतश्रममालोक्य भीषयित्वा प्रदापितम्ʼ

राजचौरादिभिर्यत्तदाछेद्यमिति कीर्तितम्ँ [ ]ँ१७ँ

अथ मालारोहणदोषमाह ---

निश्रेण्यादिभिरारुह्य मालमादाय दीयते ँ
यद्द्रव्यं संयतेभ्यस्तन्मालारोहणमिष्सतेँ१८ँ

मालां---गृहोर्ध्वभागम्ँ दोषत्वं चात्र दातुरपायदर्शनात्ँ१८ँ
अथैवमुद्गमदोषान् व्याख्याय साम्प्रतमुत्पादनदोषान् व्याख्यातुमुद्दिशति---

उत्पदनास्तु धात्री दूतनिमित्ते वनीपकाजीवौ ँ
क्रोधाद्या: प्रागनुनुतिवैद्यकविद्याश्च मन्त्रचूर्णवशा:ँ१९ँ

चींटी आदि घुस जाती हैं ँ तथा राजा आदिके भयसे जो दान दिया जाता है वह अच्छेद्य कहा जाता हैँ१७ँ

विशेषार्थ---पिण्ड निर्युक्ति (गा. ३४८) में कहा है---घ्बन्द घीके पात्र वगैरहका मुख खोलनेसे छह कायके जीवोंकी विराधना होती है ँ तथा साधुके निमित्तसे पीपेका मुँह खोलनेपर उसमें रखे तेल-घीका उपयोग परिवारके लिए क्रय---विक्रयके लिए किया जाता है ँ इसी तरह बन्द कपाटोंको खोलनेपर भी जीव विराधना होती है यह उद्‌भिन्न दोष है ँङ आच्छेद्य दोषके तीन भेद किये हैं---प्रभु विषयक, स्वामी विषयक और स्तेन विषसक ँ यदि कोई स्वामी या प्रभु यतियोंके अयोग्य है ँ इसी तरह चोरोंके द्वारा दूसरोंसे बलपूर्वक छीनकर दिया गया आहार भी साधुके अयोग्य हैँ१७ँ

आगे मालारोहण दोषको कहते हैं---

सीढी आदिके द्वारा घरके ऊपरी भागमें चढकर और वहाँसे लाकर जो द्रव्य साधुओंको दिया जाता है उसे मालारोहण कहते हैंँ१८ँ

विशेषार्थ---पिण्डनिर्युक्ति (गा.३५७) में मालारोहणके दो भेद किये हैं---जघन्य और उत्कृष्ट ँ ऊँचे छीके आदिपर रखे हुए मिष्टान्न वगैरहको दोनों पैरोंपर खडे होकर उचककर लेकर देना जघन्य मालारोहण है और सीढी वगैरहसे ऊपर चढकर वहाँसे लाकर देना उत्कृष्ट मालारोहण हैँ१८ँ

इस प्रकार उद्‌गम दोषोंका कथन करके उत्पादन दोषोंको कहते हैं---

उत्पादन दोषके सोलह भेद हैं---धात्री, दूत, निमित्त, वनीपकवचन, आजीव, क्रोध, मान, माया, लोभ, पूर्वस्तवन, वत्र्चात् स्मवन, वैद्यक,विद्या,मन्त्र, चूर्ण और वशँ१९ँ

घ्उब्भिन्ने छक्काया दाणे कयविक्कए य अहिगरणं ँ
ते चेव कवाडंमि वि सविसेसा जंतुमाईसुङँ

उत्पादादयो यथोद्‌देशं वक्ष्यन्तेँ१९ँ,

अथ पञ्चधा धात्रीदोषमाह----

मार्जन-क्रीडन-स्तन्यपान-स्वापन-मण्डनम्ं
बाले प्रयोक्तुर्यत्प्रीतो दत्ते दोष: स धात्रिकां२०ं

प्रयोक्तु:---स्वयं कर्तु: कारयितुरुपदेष्टुर्वा यत्यादे: ं प्रीत:---अनुरक्तो गृहस्थ: ं धात्रिका---धात्रीसंज्ञा: ं पञ्चधा हि धात्री मार्जन-मण्डन-खेलापन-क्षीराम्बाधात्रीभेदात् ं मार्जनादिभिश्च कर्मभिर्बाले प्रयुक्तै र्भोजनादिकमुत्पाद्य भजतो मार्जनधात्र्यादिसंज्ञो दोष: पञ्चधा स्यात् स्वाध्यायविनाशमार्गदूषणादिदोषदर्शनात्ं
उक्तं च---

घ्स्नानभूषापय:क्रीडामातृधात्रीप्रभेदत:ं
पञ्चधा धात्रिकाकार्यादुत्पादो धात्रिकामल:ं [ ]ं २०ं

अथ दूतनिमित्तदोषौ व्याकरोति -

विशेषार्थ - उद्गम दोष तो गृहस्थोंके द्वारा होते हैं और उत्पादन दोष साधुके द्वारा होते हैं ं श्वेताम्बर परम्परामें भी ये १६ उत्पादन दोष कहे हैंं १९ं

पाँच प्रकारके धात्री दोषको कहते हैं -

बालकको नहलाना, खिलाना, दूध पिलाना, सुलाना और और आभूषित करना इन पाँच कर्मोंके करनेवाले साधुपर प्रसन्न होकर गृहस्थ उसे जो दान देता है वह धात्रिका दोषसे दूषित हैंं २०ं

विशेषार्थ - जो बालकका पालन- पोषण करती है उसे धात्री या धाय कहते हैं ं वह धात्री पाँच प्रकारकी होती है ं स्नान करानेवाली मार्जन धात्री है ं खिलानेवाली क्रीडन धात्री है ं दूध पिलानेवाली स्वापन धात्री है ं और भूषण आदि धारण करानेवाली मण्डन धाय है ं जो साधु गृहस्थसे कहता है कि बालकको अमुक प्रकारसे नहलाना चाहिए आदि ं और ग्रहस्थ उसके इस उपदेशसे प्रसन्न होकर उसे दान देता है और साधु लेता है तो वह साधु धात्री नामक दोषका भागी होता है ं इसी प्रकार पाँचों दोषोंको समझना ं पिण्डनिर्युक्तिमें पाँचो धात्री दोषोंके कृत और कारितकी अपेक्षा दो- दो भेद किये हैं और प्रत्येकको उदाहरण देकर विस्तारसे समझाया है ं यथा - भिक्षाके लिए प्रविष्ट साधु बालकको रोता देखकर पूछता है यह क्यों रोता है भूखा है तो दूध पिलाओ पीछे मुझे भिक्षा दो ं या यह पूछनेपर कि बालक क्यों रोता है ? गृहिणी कहती है, हमारी धाय दूसरेके यहाँ चली गयी है ं तो साधु पूछता है कि तुम्हारी धाय कैसी है वृध्दा या जवान, गोरी या काली, मोटी या पतली ं मैं उसे खोजक लाऊँगा ं इस तरहसे प्राप्त भोजन धात्री दोषसे दूषित होता हैंं २०ं

आगे दूत और निमित्त दोषको कहते हैं ---

---

१. खेलास्वापनक्षीराम्बु भ. कु. च.

घ्धाई दूइ निमित्ते आजीव वणीमगे तिगिच्छा य

कोहे माणे माया लोभे य हवंति दस ए ए

पुव्विं पच्छा संथव विज्जा मंते य चुन्न जोगे य

उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे यं - पिण्डनि. ४०८- ९ गा.

दूतोऽशनादेरादानं संदेशनयनादिना

तोषिताद्दातुरष्टाङनिमित्तेन निमित्तकम् २१

दूत: दोषत्वं चास्य दूतकर्मशासनदूषणात् उक्तं च -

जलस्थलनभ:स्वान्यग्रामस्वपरदेशत:

सम्बन्ध वचसो नीतिर्दूतदोषो भवेदसौ [ ]

अष्टाग्ङनिमित्तेन - व्यञ्चनादिदर्शनपूर्वकशुभाशुभज्ञानेन तत्र व्यञ्जनं - मसकतिलकादिकम् अग्ङंकरचरणादि स्वर: - शब्द: छिन्नं - खड्गादिप्रहारो वस्त्रादिछेदो वा भौमं - भूमिविभाग: आन्तरिक्ष - मादिन्यग्रहाद्युदयासतमनम् लक्षणं - नन्दिकावर्तपद्मचक्रादिकम् स्वप्न: सुप्तस्य हस्ति - विमानमहिषारोहणादि- दर्शनम् भूमिगर्जनं दिग्दाहादेरत्रैवात्नर्भाव: उक्तं च -

लाञ्छनाग्ङस्वरं छिन्नं भौमं चैव नभोगतम्

लक्षणं स्वप्नतश्चेति निमित्तं त्वष्टधा भवेत् [ ]

दोषत्वं चात्र रसास्वादनदैन्यादिदोषदर्शनात् २१

किसी सम्बन्धीक मौखिक या लिखित सन्देशके पहूँचाने आदिसे सन्तुष्ट हुए दातासे भोजन आदि ग्रहण करना दूत दोष है २१

विशेषार्थ - मूलाचारमें कहा है -जिस ग्राममें या जिस देशमें साधु रहता हो वह उसका स्वग्राम और स्वदेश है साधु जल- थल या आकाशसे, स्वग्रामसे परग्राम या स्वदेशसे परदेश जाता हो तो कोई गृहस्थ कहे कि महाराज ! मेरा यह सन्देश ले जाना उस सन्देशको पानेवाला गृहस्थ यदि प्रसन्न होकर साधुको आहार आदि दे और वह ले तो उसे दूती दोष लगता है

महानिमित्त आठ हैं - व्यंजन, अंग, स्वर, छिन्न, भौम, अन्तरीक्ष, लक्षण, स्वप्न शरीरके अवयवोंको अंग कहते हैं उनपर जो तिल, मशक आदि होते हैं उन्हें व्यंजन कहते हैं शब्दको स्वर कहते हैं तलवार आदिके प्रहारको या वस्त्र आदिके छेदको छिन्न कहते हैं भूमिभागको भौम कहते हैं सूर्य आदिके उदय- अस्त आदिके छेदको कहते हैं शरीरमें जो कमल चक्र आदि चिह्न होते हैं उन्हें लक्षण कहते हैं स्वप्न तो प्रसिध्द है इन आठ महानिमित्तोंके द्वारा भावी शुभाशुभ बतलाकर यदि भोजनादि

प्राप्त किया जाता है तो व निमित्त नामक उत्पादन दोष है॰ पिण्डनिर्युक्ति (गा. ४३६) में निमित्त दोषक बुराई बतलानेके लिए एक कथा दी है - एक ग्रामनायक परदेश गया॰ उसकी पत्नीने किसी निमित्तज्ञानी साधुसे अपने पतिकी कुशलवार्ता पूछी॰ उसने बताया कि वह शीघ्र आयेगा॰ उधर परदेशमें ग्रामनायकके मनमें हुआ कि मैं चुपचाप एकाकी जाकर देखूँ कि मेरी पत्नी दु:शीला है या सुशीला॰ उधर ग्राममें सब लोग साधुके कथनानुसार उसकी प्रतीक्षा करते बैठे थे॰ जैसे ही वह पहूँचा सब आ गये॰ उसने पूछा - तुम लोगोंको मेरे आनेका

---

१. सम्बन्धि भ. कु. च.॰

२. स्वपनश्चेति - भ. कु. च.॰

३.जलथलआयासगदं सयपरगामे सदेसपरदेसे॰

संदंधिवयणणयणं दूदीदोसो हवदि एर्सो - ६॰ २९

अथ वनीपकाजीवदोषावाह -

दातु: पुण्यं श्वादिदानादस्त्येवेत्यनुवृत्तिवार्क्

वनीपकोक्तिराजीवो वृत्ति: शिल्पकुलादिना॰ २२॰

दातुरित्यादि - शुनक- काक- कुष्टाद्यार्तमध्याह्नकालागतमांसाद्यासक्तद्विजदीक्षोपजीवि- पार्श्वस्थतापसादि- श्रमणछात्रादिभ्यो दत्ते पुण्यमस्ति न वेति दानपतिना पृष्ठे सत्यस्त्येवेन्यनुकूलवचनं भोजनाद्यर्थ वनीपकवचनं नाम दोषो दीनत्वादिदोषदर्शनात्॰ उक्तं च -

साण - किविण - तिहि- माहण- पासंडिय - सवण - कागदाणादी॰

पुण्णं ण वेति पुड्ढे पुण्णं तिय वणिवयं वयणं॰[मूलाचार गा. ४५१]

वृत्तिरित्यादि - हस्तविज्ञान - कुल - जात्यैश्वर्यतपोऽनुष्ठानान्यसात्मनो निर्दिश्य जीवनकरणमित्यर्थ :॰ उक्तं च -

आजीवस्तप ऐश्वर्य शिल्पं जातिस्तथा कुलम्॰

तैस्तूत्पादनमाजीव एष दोष: प्रकथ्यते॰

दोषत्वं चात्र वीर्यागूहनदीनत्वादिदोषदर्शनात्॰ २२॰

अथ हस्तिकल्पादिनगरजाताख्यानप्रकाशनमुखेन क्रोधादिसंज्ञाश्चतुरो दोषानाह -

---

पता कैसे लगा॰ सब बोले - तुम्हारी पत्नीने कहा था॰ उस समय वह साधु भी उसके घरमें उपस्थित था॰ पतिने पत्नीसे पूछा -- तुमने मेरा आना कैसे जाना ? कह बोली - साधुके निमित्तज्ञानसे जाना॰ तब उसने

पुन: पूछा - उसका विश्वास कैसे किया ? पत्नी बोली - तुम्हारेसाथ मैंने पहले जो कुछ चेष्टाएँ कीं, वार्तालाप किया, यहाँ तक कि मेरे गुह्य प्रदेशमें जो चिह्न है वह सब साधुने सच - सच बतला दिया तब वह क्रुध्द होकर साधुसे बोला - बतलाओ इस घोडीके गर्भमें क्या है ? साधुने कहा - पाँच रंगका बच्चा उसने तुरन्त घोडीका पेट फाड डाला उसमें - से वैसा ही बच्चा निकला तब उसने साधुसे कहा - यदि तुम्हारा कथन सत्य न निकलता तो तुम भी जीवित न रहते अत: साधुको निमित्तका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए २१

वनीपक और आजीव दोषको कहते हैं -

कुत्ते आदिको दान करनेसे पुण्य होता ही है इस प्रकार दाताके अनुकुल वचन कहकर भोजन प्राप्त करना वनीपकवचन नामक दोष है अपने हस्तविज्ञान, कुल, जाति, ऐश्वर्य, तप आदिका वर्णन करकेभोजन प्राप्त करना आजीव नामक दोष है २२

विशेषार्थ - तात्पर्य यह है कि दाताने पूछा - कुत्ता, कौआ, कुष्ट आदि व्याधिसे पीडित अतिथि, मध्याह्न कालमें आये भिक्षुक, मांसभक्षी ब्राह्मण, दीक्षासे जीविका करनेवाले पार्श्वस्थ तापस आदि श्रमण, छात्र आदिको दान देनेमें पुण्य है या नहीं ? भोजन प्राप्त करनेके लिए घ्अवश्य पुण्य हैङ ऐसा कहना वनीपक वचन नामक दोष है क्योंकि उसमें दीनता पायी जाती है वनीपकका अर्थ है याचक - भिखारी भिखारी- जैसे वचन बोलकर भोजन प्राप्त करना दोष है मूलाचारमें भी ऐसा ही कहा है २२

आगे हस्तिकल्प आदि नगरोंमें घटित घटनाओंकेप्रकाशन द्वारा क्रोध,मान, माया, लोभ नामकेचार दोषोंको कहते हैं -

क्रोधादिबलाददलत्र्चत्वारस्तदभिधा मुनेर्दोषा:
पुरहस्तिकल्पवेन्नातटकासीरासीयनवत् स्यु: २३

तदभिधा: -- क्रोध-मान-माया-लोभनामान: कासी-वारणासी कथास्तूत्प्रेक्ष्य वाच्या: २३

अथ पूर्वसंस्तव-पश्चात्संस्तवदोषावाह ---

हस्तिकल्पपुर, वेन्नातट, कासी और रासीयन नामकेनगरोंकी तरह क्रोध, मान, माया और लोभके बलसे भोजन प्राप्त करनेवाले मुनिकेक्रोध, मान, माया, लोभ नामकेदोष होते हैं २३

विशेषार्थ -- यदि साधु क्रोध करकेभिक्षा प्राप्त करता है तो क्रोध नामका उत्पादन दोष होता है यदि मान करकेभिक्षा प्राप्त करता है ता मानदोष होता है यदि मायाचार करकेभिक्षा उत्पन्न करता है तो माया नामक उत्पादन दोष होता है यदि लोभ दिखलाकर भिक्षा प्राप्त करता है तो लोभ नामक उत्पादन दोष होता है हस्तिकल्प नगरमें किसी साधुने क्रोध करकेभिक्षा प्राप्त की थी वेन्नातट नगरमें किसी साधुने मानसे भिक्षा प्राप्त की थी वाराणसीमें किसी साधुने मायाचार करके भिक्षा प्राप्त की थी राक्षियानमें किसी साधुने लोभ बतलाकर भिक्षा प्रप्त की थी मूलाचारमें (६/३५) इन नगरोंका उल्लेख मात्र है और टीकाकारने केवल इतना लिखा है कि इनकी कथा कह लेना चाहिए पिण्डनिर्युक्तिमें (गा.४६१) उन नगरोंका नाम हस्तकल्प, गिरिपुष्पित, राजगृह औच चम्पा दिया है और कथाएँ भी दी हैं -

-- हस्तकल्प नगरमें किसी ब्राम्हणके घरमें किसी कृतकके मासिक श्राध्दपर किसी साधुने भिक्षाके लिए प्रवेश किया ँ किन्तु द्वारपालने मना कर दिया ँ तब साधुने क्रुध्द होकर कहा --- आगे देना ँ दैवयौगसे फिर कोई उस घरमकं मर गया ँ उसके मासिक श्राध्द पर पुन: वह साधु भिक्षाके लिए आया ँ द्वारपालने पुन: मना किया और वह पुन: क्रुध्द होकर बोला --- आने देना ँ दैवयोगसे उसी घरमें फिर एक मुनष्य मर गयाँ उसकेमासिक श्राध्दपर पुन: वह भिक्षु भिक्षाकेलिए आया ँ द्वारपालने पुन: रोका और साधुने पुन: घ्आगे देनाङ कहा ँ यह सुनकर द्वारपालने विचारा-- पहले भी इसने दो बार शाप दिया और दो आदमी मर गयें यह तीसरी बेला है ँ फिर काई न मर जाये ँ यह विचारकर उसने गृहस्वमीसे सब वृत्तान्त कहाँ और गृहस्वामीने सादर क्षमा-याचना-पूर्वक साधुको भोजन दिया यह क्रोधपिण्डका उदाहरण है ँ इसी तरह एक साधु एक गृहिणीके घर जाकर भिक्षामें सेवई माँगता है ँ किनतु गृहिणी नहीं देती ँ तब साधु अहंकारमें भरकर किसी तरह उस स्त्रीका अहंकार चूर्ण करनेके लिए उसके पतिसे सेवई प्राप्त करता है ँ यह मानसे प्राप्त आहारका उदाहरण है ँ इसी तरह माया और लोभके भी उदाहरण हैं ँ श्वेताम्बर परम्परामें साधु घर-घर जाकर पात्रमें भिक्षा लेते हैं ँ इसलिए ये कथानक उनमें घटित हेाते हैं दिगम्बर परम्परामें तो इस तरह भिक्षा माँगनेकी पध्दति नहीं हैं ँ अत: प्रकारान्तरसे अन दोषोंकी योजना करनी चाहिए ँ यथा -- सुस्वादु भोजनके लोभसे समृध्द श्रावकोंको फाटकेके आँक बतलानेका लोभ देकर भोजनादि प्राप्त करना ँ या क्रुध्द होकर शापका भय देकर कुछ प्राप्त करना आदि ँ२३

आगे पूर्वस्तुति और पश्चात् स्तुतिदोषोंको कहते हैं ---

स्तुत्वा दानपतिं दानं स्मरयित्वा च गृह्नत: ।
गृहीत्वा स्तुवतश्च स्त: प्राक्पश्चात्संस्तवौ क्रमात् ॥ २४ ॥

स्तुत्वा-त्वं दानपतिस्तव कीर्तिर्जगद्व्यापिनीत्यादिकीर्तनं कृत्वा । स्मरयित्वा-त्वं पूर्व महादान-पतिरिदानीं किमिति कृत्वा विस्मृत इति संबोध्य । दोषत्वं चात्र नग्नाचार्यकर्तव्यकार्पण्यादोषदर्शनात् ॥ २४ ॥

अथ चिकित्सा-विद्या-मन्त्रांस्त्रीन् दोषानाह-

चिकित्सा रुक्प्रतीकाराद्विद्यामाहात्म्यदानत: ।
विद्या मन्त्रश्च तद्दानमाहात्मयाभ्यां मलोऽश्नत: ॥ २५ ॥

रुक्प्रतीकारात्- कायाद्यष्टाङचिकित्सात् शस्त्रबेन ज्वरादिव्याधिग्रहादीन्निराकृत्य तन्निराकरणमुपदिश्य च । उक्तं च-

'रसायनविषक्षारा: कौमारङ्गचिकित्सिते ।
चिकित्सादोष एषोऽस्ति भूततं शिल्पं शिराष्टधा ॥ [ ]

शिरेति शाक्यम् । दोषतवं चात्र सावद्यादिदोषदर्शनात् । विद्येत्यादि-आकाशगामिन्यादिविद्याया: प्रभावेण प्रदानेन वा । तदुक्तम् --

विद्या साधितसिध्दा स्यादुत्पादस्तत्प्रदानत: ।
तस्या माहात्म्यतो वापि विद्यादोषो भवेदसौ ॥ [ ]

दाताकी स्तुति करके और पहले दिये हुए दानका स्मरण कराकर दान ग्रहण करनेवाला साधु पूर्वसतुति नामक दोषका भागी होता है । तथा दान ग्रहण करके दाताकी स्तुति करनेवाला साधु पश्चात् स्तुति दोषका भागी होता है ॥ २४ ॥

आगे चिकित्सा, विद्या और मन्त्र इन तीन दोषोंको कहते हैं -

चिकित्सा शात्रके बसे ज्वर आदि व्याधियोंको दूर करके उससे आहार प्राप्त करनेवाला साधु चिकित्सा नामक दोषका भागी है । आकाशगामिनी आदि विद्याके प्रभावसे या उसके दानसे आहार प्राप्त करनेवाला साधु विद्या नामक दोषका भागी है । या मैं तुम्हें अमुक विद्या दूँगा ऐसी आशा देकर भोजन आदि प्राप्त करनेपर भी वही दोष होता है । सर्व आदिका विष दूर करनेवाले मन्त्रके दानसे या उसके माहत्म्यसे या मन्त्र देनेकी आशा देकर भेजनादि प्राप्त करनेसे मन्त्र नामक दोष होता है ॥ २५ ॥

विशेषार्थ-मूलाचार (६।३३) में चिकित्साके आठ प्रकार होनेसे चिकित्सा दोष भी आठ बतलाये हैं- कौमारचिकित्सा अर्थात् बाकोंकी चिकित्सा, शरीर चिकित्सा अर्थात् ज्वरादि दूर करना, रीसायन-जिससे उम्र बढंती है, शरीरकी झुर्रियाँ आदि दूर होती हैं, विष चिकित्सा अर्थात् विष उतारना, भूत चिकित्सा- भूत उतारनेका इाज, क्षारतन्त्र अर्थात् दुष्ट घाव वगैरहकी चिकित्सा, शलाका चिकित्सा अर्थात् साई द्वारा आँख आदि खोलना, शल्य चिकित्सा अर्थात् फोडा चीरना । इन आठ प्रकारोंमें-से किसी भी प्रकारसे

किंच्च, तुभ्यमंहं विद्यामिमां दास्यामीत्याशाप्रदानेन च भुक्त्युत्पादेऽपि स एव दोषा: । तथा चोक्तम्-

विज्जा साधितसिध्दा तिस्से आसापदाणकरणेहिं ।
तिससे माहपपेण यविज्जादोसो दु उप्पादो ॥ [मूलाचार गा. ४५७]

मन्त्र:- सर्पादिविषपहर्ता । अत्रापि मन्त्राशाप्रदाननेत्यपि व्याख्येयम् । दोषत्वं चात्र लोकप्रतारण जिह्मागृध्यादिदोषदर्शनात् ॥ २५ ॥

अथ प्रकारानतरेण तावेवाह-

विद्यासाधितसिध्दा स्यान्मन्त्र: पठिसिध्दक: ।
ताभ्यां चाहूय तौ दोषौ स्तोऽश्नतो भुक्तिदेवता: ॥ २६ ॥

भुक्तिदेवता:- आहारप्रदव्यन्तरादिदेवान् । उत्कं च-

विद्यामन्त्रै: समाहूय यद्दानपतिदेवता: ।

साधित: स भवेद्दोषे विद्यामन्त्रसमाश्रय: ॥ [ ] ॥ २६ ॥

अथ चूर्णमूलकर्मदोषावाह-

दोषो भोजनजननं भूषाञ्जनचूर्णयोजनाच्चूर्ण: ।
स्यानमूलकर्म चावशवशीकृतिवियुक्त योजनाभ्यां तत् ॥ २७ ॥

उपकार करके आहार आदि ग्रहण करना चिकित्सा दोष है । पिण्डनिर्युक्तिमें चिकित्सासे रोग प्रतीकार अथवा राग प्रतीकारका उपदेश विवक्षित है । जैसे, किसी रोगीने रोगके प्रतीकारके लिए साधुसे पूछा तो वह बोला-क्या मैं वैद्य हूँ ? इससे यह ध्वनित होता है कि वैद्यके पास जाकर पूछना चाहिए । अथवा रोगीके पूछनेपर साधु बोला-मुझे भी यह रोग हुआ था । वह अमुक औषधिसे गया था । या वैद्य बनकर चिकित्सा करना यह दूसरा प्रकार है । जो साधनासे सिद होती है असे विद्या कहते है˙ और जो पाठ करनेसे सिध्द होता है असे मन्त्र कहते हैं । इनके द्वारा आहारादि प्राप्त करनेसे लोकमें साधुपदकी अकीर्ति भी हो सकती है । असे लोकको ठगनेवाला भी कहा जाता है अथवा मैं तुम्हें अमुक विद्या प्रदान करुँगा ऐसी आशा देकर भोजन प्राप्त करनेपर भी यही दोष आता है । मूलाचार त्र गा. ६३८) में कहा है- जोसाधनेपर सिध्द होती है उसे विद्या कहते हैं । उस विद्याकी आशा देकर कि मैं तुम्हें यह विद्या दूँगा और उस विद्याक माहात्म्यके द्वारा जो जीवन-यापन करता है उअसे विद्योत्पादनक नामक दोष होता है ॥ २५ ॥

प्रकारानतरसे उन दोनों दोषोंको कहते हैं -

जोपहले जप, होम आदिके क्षरा साधना किये जानेपर सिध्द होती है वह विद्या है । और जो पहले गुरुमखसे पढनेपर पीछे सिध्द अर्थात् कार्यकारी होता है वह मन्त्र है । उन विद्या और मन्त्रके द्वारा आहार देनेमें समर्थव्यन्तर आदि देवोंको बुलाकर उनके द्वारा प्राप्त कराये भोजनको खानेवाले साधुके विद्या और मन्त्र नामक दाष होते हैं ॥ २६ ॥

चूर्ण और मूलकर्म दोषोको कहते हैं-

शरीरको सुन्दर बनानेवाले चूर्ण और आँखोंको निर्मल बनानेवाले अंजनचूर्ण उनके अभिलाषी दाताको देकर अससे आहार प्रज्ञपत करना चूर्ण दोष है । जो वशमें नही है उसे वशमें करना और जिन स्त्री-परषों में परस्परमें वियोग हुआ है उनको मिलाकर भोजन प्राप्त करना मूलकर्म दोष है ॥ २७ ॥

भूषाञ्जनचूर्ण:- शीरशोभालक्ङरणाद्यर्थ नेत्रनैर्मल्यार्थं च द्रव्यरज: । तत् भोजनजननम् । दोषत्वं चात्र पूर्वत्र जीविकादिक्रियया जीवनात्, परत्र च लज्जाद्याभोगस्य करणात् ॥ २७ ॥

अथैवमुत्पादनदोषान् व्याख्यायेदानीमशनदोषोद्देशार्थमाह-

शक्ङित-पिहित-भ्रक्षित-निक्षिप्त-च्छोटितापरिताख्या: ।
दश साधरणदायकलिपतविमित्रै: सहोत्यशनदोषा: ॥ २८ ॥

स्पष्टम् ॥ २८ ॥

अथ शक्ङितदोषपिहितदोषै लखयति-

संदिग्धं किमिदं भोज्यमुक्तं नो वेति शक्ङितम् ।
पिहितं देयमप्रासु गुरु प्रास्वपनीय वा ॥ २९ ॥

भोज्य- भोजनार्हम् । उक्तं-आगमे प्रतिपादितम् । यच्च किमयमाहारो अध:कर्मणा निष्पनन उत न इत्यादिशक्ङा कृत्वा भुज्यते सोऽपि शक्ङितदोष एव । अप्रासु-सचितं पिधानद्रव्यम् । प्रासु-अचित्त पिधानद्रव्यम् । गुरु-भारिकम् । उत्तं च-

---

विशेषार्थ-पिण्डनिर्युक्तिमें ऑखोंमें अदृश्य होनेका अंजन लगाकर किसी घरमें भोजन करना चूर्ण दोष है । जैसे दो साधु इसके प्रकारसे अपनेको अदृश्य करके चन्द्रगुप्तके साथ भोजन करते थे । चन्द्रगुप्त भूखा रह जाता था । धीरे-धीरे उसका शरीर कृश हाने लगा । तब चाणक्यका उधर ध्यान गया और उसने युक्तिसे दोनोंको पकड लिया । दूसरे, एक साधु पैरमें लेप लगाकर नदीपर-से चलता था । एक दिन वह इसी तरह आहारके लिए गया । दाता उसके पैर धोने लगा तो वह तैयार नहीं हुआ । किन्तु पैर पखारे बिना गृहस्थ भोजन कैसे कराये । अत: साधुको पैर धुलाने पडे । पैरोंका लेप भी धुल गया । भोजन करके जानेपर साधु नदीमे डूबने लगा तो उसकी पोल खुल गयी । मूल दाषका उदाहरण देते हुए कहा है-एक राजाके दो पत्नियाँ थीं । बडी पत्नी र्भवती हुई तो दोटीको चिनता हुई । एक दिन एक साधु आहारके लिए आये तो उनहोंने छोटीसे चिन्ताका कारण पूछा । उसके बतलानेपर साधने कहा- तमत चिनता मत करो । हम दवा देते है तुम भी गर्भवती हो जाओगी । छोटी बोली-गद्दीपर तो बडीका ही पुत्र बैठेगा । ऐसी दवा दो जो उसका भी गर्भ गिर जाये । साधुने वैसा ही किया । यह मूल दोष है ॥ २७ ॥

इस प्रकार उत्पदन दोषोंका प्रकरण समापत हुआ ।

इस प्रकार उत्पादन दोषोंको कहकर अब अशन दोषोंको कहते हैं-

जो खाया जाता है उसे अशन कहते हें । अशन अर्थात् भोज्य । उसके दस दोषा हैं-शंकित, पिहित, म्रक्षित, निक्षिपत, छोअित, उपरिणत, साधारण, दायक , पित और विमिश्र ॥ २८ ॥

अब शंकित आदि दोषोंके लक्षण कहनेकी इच्छासे प्रथम ही शंकित और पिहित दोषोंके लक्षण कहते हैं-

यह वस्तु आगममें भोजनके योग्य कही है अथवा नहीं कही है इस प्रकारका सन्देह होते हुए उसे ग्रहण करना शंकित दोष है । यह आहार अध:कर्मसे बना है या नहीं, इत्यादि

पिहितं यत्सचित्तेन गुवंचित्तेन वापि यत् ।
तत् त्यक्त्वैव च यद्देयं बोध्दव्यं पिहितं हि तत् ॥ [ ] ॥ २९ ॥

अथ म्रक्षितनिक्षिपतदोषै लक्षयति-

भ्रक्षितं स्निग्धहस्ताद्यैदंत्तं निक्षिप्तमाहितम् ।
सचित्तक्ष्माग्निवार्बीजहरितेषु त्रसेषु च ॥ ३० ॥

हस्ताद्यै:- आद्यशब्दाद् भाजनं कडच्छुकश्च । दोषतवं चात्र सम्मूर्च्छनादिसूक्ष्मदोषदर्शनात् । आहतंउपरिस्थापितम् । सचित्तानि-सजीवान्यप्रासुकयुक्तानि वा कायरुपाणि । उक्तं च-

सच्चित पुढविआऊ तेउ। हरिदं च वीयतसजीवा ।
जं तेसिमुवरि ठविदं णिक्खितं होदि छब्भेयं ॥ [मूाचार ४६५ गा.] ॥ ३० ॥

अथ छोटितदोषमाह-

भुज्-यते बहुपातं यत्करक्षेत्र्यथवा करात् ।
गलभ्दित्वा करौ त्यक्त्वाऽनिष्टं वा छोटितं च तत् ॥ ३१ ॥

भुज्यत इत्यादि । यद्बहुपातं- प्रचुरमन्नं पातयित्वा अर्थादलपं भुज्यते । यद्वा करक्षेऽपि-गत्परिवेषकेण हस्तू प्रक्षिप्यमाणं तक्राद्यै: परिस्त्रवद् भुज्यते । यद्वा कराद् गत् - स्वहस्तात् तक्राद्यौ: परिस्त्रवद्

शंका होते हूए उसे ग्रहण करना भी शंकित दोष है । सचित या अचित्त किन्तु भारी वस्तुसे ढके हुए भोजनको ढकना दूर करकेजो भोजन साधुको दिया जाता है वह पिहित दोषसे युक्त है ॥ २९ ॥

म्रक्षित और निक्षिप्त दोषको कहते हैं-

घी-तेल आदिसे लिपत हाथसे या पात्रसे या करछुसे मुनिको दिया हुआ दान म्रक्षित दोषसे युक्त है । सचित पूथ्वी, सचित्त जल, सचित्त अग्नि, सचित्त बीज औरी हरितकाय या त्रसकाय जीवोंपर रखी वस्तु हो उसको मुनिको देना निक्षिप्त दोष है ॥ ३० ॥

विशेषार्थ-श्वे. पिण्डनिर्युक्ति में म्रक्षितकेदो भेद हैं- सचित्त म्रक्षित, अचित्त म्रक्षित । सचित्त म्रक्षिके तीन भेद हैं- पूथिवीकय म्रक्षित, अपकाय म्रक्षित, वनस्पतिकाय म्रक्षित । अचित्त म्रक्षितकेदा भेद हैं- गर्हित और इतर । चर्बी आदिसे लिप्त गर्हित है और घृत आदिसे लिपत इतर है । सचित्त पृथ्वीकायदे दो भेद हैं- शुष्क और आर्द्र । जो देय, पात्र या हाथ सूखी चिकनी धूलसे और जो आर्द्र सचित्त पृथिवीकायसे म्रक्षित होता है वह सचित्त पृथिवीकाय म्रक्षित है । अप्काय म्रक्षितकेचार भेद हैं-पुर:कर्मक्ष पश्चात्कर्म, सस्निग्ध और जलार्द्र । साधुको भोजनादि देनेसे पहले जो हस्त आदिका जलसे प्रक्षालन किया जाता है वह पुन:कर्म है । जो भोजनदानकेपश्चात् किया जाता है वह पश्चात्कर्म है । हाथको मामूली जल लगा रहे तो ससिनग्ध है और स्पष्ट रुपसे हो तो जलार्द्र है । प्रत्सयेक वनस्पति आम्र लादि, अननतकाय वनस्पति,

कअहल आदिके तत्काल बनाये टुकडोंसे यदि हस्तादि लिपत हो तो वनस्पति म्रक्षित है। शेष तीन अग्नि, वायु और त्रस इन तीनोंसे म्रक्षित नहीं माना है कयोंकि में इनसे म्रक्षित होनेपर भी मे्रक्षित नहीं कहा जाता। इसी तरह निक्षप्तकेभी अनेक भेद-प्रभेदोंनका कथन है ॥ ३० ॥

दोटित दोषको कहते हैं -

छोटित दोषके पाँच प्रकार हैं। संयमीके क्षरा बहुित-सा अन्न नीचे गिराते हुए थेडा खाना। परोसनेवाले दाताकेद्वारा हाथमें तक्रआदि देते हुए यदि गिरता हो तो ऐसी

भुज्यते। यद्वा भित्वा करौ-हसतपुटं पृथक्कृत्य भुज्यते। यद्वा त्यक्त्वानिष्टं - अनिभरुचितमुज्णितवा इष्टं भुज्यते, तत्पञ्चप्रकारमपि छोटितमित्युच्यते ॥ ३१ ॥

अथापरिणतदोषमाह-

तुषचण-तिल- तण्डुल-जलमुष्णजलं च स्वर्णगन्धरसै:।
अरहितमपरमपीदृशमपरिणतं तनन मुनिभिरुपयोज्म् ॥ ३२ ॥

तुषेतयादि- तुषप्रक्षानं चपणकप्रक्षालनं तिलप्रक्षालनं तण्डुप्रक्षानं वा यच्चोष्णजलं तपतं भूतवा शीतमुदकं स्ववर्णाद्यैरपरित्यक्तमन्यदपीदृशमपरिणत हरीतकीचूर्णादिनाअविध्वस्तं यज्जलं तनमुनिभिस्त्याज्यमित्यर्थ:। तुषजलादीनि परिणतानयेव ग्राह्याणभति भाव:। उक्तं च-

ति-तंउुल-उसणोदय-चणेदय तुसोदयं अविध्दत्थं।
अण्णं तहाविहं वा अपरिणदं णेव गिण्हिज्जो ॥ [मूलाचार, गा. ४७३]

अपि च-

तिलादिजलमुष्णं च तोयमन्यच्च तादृशम्।
कराद्यताडितं चैव गृहीतव्यं मुमुक्षुभि: ॥ [ ] ॥ ३२ ॥

अथ साधारणदोषमाह-

यद्दातुं सुभ्रमाद्वस्त्राद्याकृष्यान्नादि दीयते।
असमीक्ष्य तदादानं दोष: साधारणोऽशने ॥ ३३ ॥

संभ्रमात्- संक्षोभाद्द्य भयादादराक्ष। असमभक्ष्य- सभ्यगपर्यालोच्य, अन्नादि। उक्तं च-

संभ्रमाहरणं कृत्वाऽऽदातुं पात्रदिवस्तुन:।

असमीक्ष्यैव यद्देयं दोष: साधारण: स तु ॥ [ ] ॥ ३३ ॥

अवस्थामें उसे ग्रहण करना २, अथवा मुनिके हाथसे तक्र आदि नीचे गिरता हो तो भी भोजन करना ३. दोनों हथेलियोंको उलग करके भोजन करना ४. और जो न रुचे उसे खाना ये सब छोटित दोष हैं ॥ ३१ ॥

अपरिणत दोषको कहते हैं-

तुष, चना, तिल और चावलके धोवनका जलण, और वह जल जो गर्भ होकर ठण्डा हो गया हो, जिसके रुप, रस और गन्धमें परिवर्तन न हुआ हो अर्थात् हरउके चूर्ण आदिसे जो अपना रुप-रस आदि छोडकर अन्य रुप-रसवाला न हुआ हो उसको अपरिणत कहते हैं । ऐसा जल मुनियोंके उपयोगके योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

विशेर्षाश्वे. पिण्डनिर्युक्ति (गा. ६०९ आदि) में अपरिणतका स्वरुप तलाते हुए कहा है- जैसे दूध दूधरुपसे भ्रष्ट होकर दधिरुप होनेपर परिणत कहा जाता है, वैसे ही पूथिवी कायादिक भी स्वरुपसे सजीव होनेपर यदि सजीवत्वसे मुक्त नहीं हुएस तो अपरिणत कहे जाते हैं और जीवसे मुक्त होनेपर परिणत कहे जाते हैं । अपरिणतके अनेक भेद कहे हैं ॥ ३२ ॥

साधारण दोषको कहते हैं-

देनेके भावसे, घबराहटसे या भयसे वस्त्र, पात्र आदिको बिना विचारे खींचकर जो अनन आदि साधुको दिया जाता है उसका ग्रहण करना भोजनका साधारण नामक दोष है ॥ ३३ ॥

अथ दायकदोषमाह-

मलिनी-गर्भिणीघ्-लिडिन्यादिनार्या नरेण च ।
शवादिनाऽपि क्लीबेन दत्तं दायकदोषभाक्॥ ३४ ॥

मनि-रजस्वा । गर्भिणी- गुरभारा । शव:-मूतकं स्मशाने प्रक्षिप्यागतो मूतकसूतकयुक्तो वा । आदिशब्दाद् व्याधितादि: । उक्तं च-

सूती शौण्डी तथा रोगी शव: षण्ड: पिशाचवान् ।
पतितोच्चारनग्नाश्च रक्ता वेश्या च लिडिनी ॥
वान्ताऽन्भयक्ताडिका चातिबाला वृध्दा च गभ्रिणी ।
अदनत्यन्धा निषण्णा च नीचोच्चस्था च सान्तरा ॥

विशेषार्थ-मूलाचारमें इस दोषनाम संव्यवहरण है । संव्यवहरणका अर्थ टीका कारने किया है- जदीसे व्यवहार करके या जदीसे आहरण करके। इसीपर से इसीपर से इस दोषका नाम संव्यवहारण ही

उचित प्रतीत होता है। श्वे. पिण्डनिर्युक्तिमें भी एसका नाम संहरण है। पं. आशाधरजीने साधारण नाम किसी अन्य साधारणसे दिया है। किन्तु वह उचित प्रतीत नहीं होता क्योकि एस दोशका जो स्वरुप है वह साधारण शबदसे व्यक्त नहीं होता। संव्यवहरण या संहरण शब्दसे ही व्यक्त होता है। अनगार धर्मामृतकी पं. आशाधरजीकी टीकामें एस प्रकरणमें जो प्रमाण उद्धृत किये हैं वे अधिकतर संस्कृत शोक हैं। वे शेक किस ग्रनिकेहैं यह नहीं चल सका है फिर भी मूलाचारकी गाथाओंके साथ तुलना करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे शेक मूलाचारकी गाथाआंपर-से ही रचे गये हैं। उसीमें एस दोषका नाम साधारण लिक्षा है। किन्तु उसके लक्षणमें जो संभ्रम आहरण पद प्रयुक्त हुआ है उसीसे इस दोषका नाम संव्यवहरण सिध्द होता है साधारण नहीं॥ ३॥

आगे दायक दोषको कहते हैं -

रजस्वा, गर्भिणी, आर्यिका आदि स्त्री के द्वारा तिाा मृतकको स्मशान पहुँचाकर आये हुए या मृतकके सूतकवाले मनुष्यके द्वारा और नपुंसकके द्वारा दिया गया दान दायक दोषकसे युश्क्त होता है॥ ३४॥

विशेषार्थ-मूलाचारमें लिखा है- जिसके प्रसव हुआ है, जो मद्यपायी है, रोगी है, मृतकको श्मशान पहुँचाकर आया है, या मृतकके सूतकवाहै, नपुंसक है, नपुंसक है, भूतसे ग्रस्त है,

---

संववहरणं किच्चा पदादुमिदि चेलभायणा दीणं।

असमिक्खिय जं देयं संववहरणो हवदि दोषो॥ - मूला. ६।४८

सूदी सुंडी रोगी मदय-णवुंसय-पिसाय-णग्गो य।

उच्चार-पडिद-वंत-रुहिर-वेसी समणी अंगमक्खीया॥

अतिवाला अतिवुडछा घासत्ती गब्भिणी य अंधलिया।

अंतरिदा व णिसण्णा उच्चत्था अहव णीचत्था॥

पूयण पज्जणं वा सारण पच्छादणं च विज्-झवणं।

किच्चा तहागीकज्जं णिव्वादं घट्टणं चावि॥

लेवण मज्जणकम्मं पियमाणं दारयं च णिक्खविय।

एवं विहादिया पुण दाणं जदि दिंति दायगा दोसा॥ - मूलाचार ४९-५२ गा.।

फूत्कारं ज्वालनं चैव सारणं छादनं तथा।

विध्यापनाग्निकार्ये च कृत्पवा निश्च्यावघट्टने॥

लेपनं मार्जनं त्यक्त्वा स्तनलग्नं शिशुं तथा।

दीयमाने हि दानेऽस्ति दोषो दायकगोचरः॥ [ ]

सूतो-बालप्रसाधिका। शोण्डी- मद्यपानलम्पटा। पिशाचवान्-वातापहतः पिशाचगृही तो वा। पतितः- मूर्छागतः। उच्चारः- उच्चारमूत्रादीन् कृत्वाऽऽगतः। नग्नः- एकवस्त्रो वस्त्रहीनो वा। रक्ता- रुधिरसहिता। लिडिनी- आर्यिका अिवा पञ्चश्रमणिका रक्तपटिकादयः। वानता-छर्दिं कृत्वा आगता।

अभ्यक्ताडिका-अडाभ्यञ्जनकारिणी अभ्यक्तशीरा वा। अदनी-यत् किंचिद् भक्षयन्ती। निषण्णा- उपविष्टा। नीचोच्चस्था-नीचे उच्चे वा प्रदेशे स्थिता। सान्तरा- कुण्ड्यादिभिर्व्यवहिता। फूत्कारं-सन्धुक्षणम्। ज्वालनं-मुखवातेनानयेन वा अग्निकाष्ठादीनां प्रलेपनं (प्रदीपनं)। सारणं-काष्ठादीनामुत्कर्षणम्। छादनं-भस्मादिना अग्नेः प्रच्छादनम्। विध्यापनं-जलादिना निर्वापणम्। अग्निकार्य-अग्नेरितस्ततः करणम्। निश्च्यावः-काष्ठादिपरित्यागः। घट्टनं-अग्नेरुपरि कुम्भ्यादिचामनम्। `पनं-गोमयकर्दमादिना कुड्यादेरुपदेहम्। मार्जनं-स्नानादिकं कर्म, कृत्वा इति संबन्धः। शौण्डी रोगीत्यादिषु डिमतन्त्रम्॥ ३४॥

अथ लिपतदोषमाह-

यद्गैरिकादिनाऽऽमेन शकेन सलिलेन वा।
आर्द्रेण पाणिनादेयं तल्लिप्तं भाजनेन वा॥ ३५॥

गैरिकादिना, आदिशब्दात् खटिकादि विशेषणकरणे वा तृतीया। आमेन-अपक्वेन तण्डुलादिपिष्टेन। उक्तं च-

गेरुयहरिदोण व सेढीय मणोसिलामपिट्ठेण।
सपवालदगुल्लेण व देयं करण्भाजणे लित्तं॥ [मूलाचार, गा. ४७४]॥ ३५॥

नग्न है, मलमूत्र आदि त्यागकर आया है, मूर्च्छित है, जिसे वमन हुआ है, जिसके खून बहता है, जो वेश्या है, आर्यिका है, तेल मालिश करनेवाली है, अति बालहै, अति वृध्दा है, भोजन करती हुई है, गर्भिणी है, अन्ध है, पर्देमें है, बैठी हुई है, नीचे या ऊँचे प्रदेशपर खडी है, ऐसी स्त्री हो या पुरुष उसकेहाथसे भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। मुँहकी हवासे या पंखेसे अग्निकोँूकना, अग्निसे लकडी जलाना, लकडी सरकाना, राखसे अग्निको छाकना, पानीसे बुझाना, तथा अग्नि सम्बन्धी अन्य भी कार्य करना, लकडी छाडना, अग्निको खींचना, गोबर लीपना, स्नान आदि करना, दूध पीते हुए बालकको अलग करना, इत्यादि कार्य करते हुए यदि दान देती है या देता है तो दायक दोष है। पिण्डनिर्युक्ति (गा. ५७२-५७७) में भी इसी प्रकार ४० दायक दोष बताये हैं और प्रत्येकमें क्यों दोष है यह भी स्पष्ट किया है।

लिप्त दोषको कहते हैं-

गेरु, हरताल, खडिया मिट्टी आदिसे, कच्चे चावल आदिकी पिट्ठीसे, हरे शाकसे, अप्रासुक जलसे लिप्त हाथसे या पात्रसे या दोनों ही से आहारादि दिया जाता है वह लिपत नामक दोष है॥ ३५॥

अथ विमिश्रदोषमाह-

पृथ्व्याऽप्रासुकयाऽद्भिश्च बीजेन हरितेन यत्।
मिर जीवत्त्रसैश्चाननं महादोषः सथ मिश्रकः॥ ३६॥

पृथ्व्या - मृत्तिकया । बीजेन-यवगोधूमादिना । हरितेन-पत्रपुष्फलादिना । महादोष:- सर्वथा वर्जनीय इत्यर्थ: । उक्तं च-

सजीवा पृथिवी तोयं नीलं बीजं तथा त्रस: ।
अमीतभि: पञ्चभिर्मिश्र आहारो मित्र इष्यते ॥ [ ] ॥ ३६ ॥

अथाडार-धूम-संयोजमाननामानो दोषास्त्रयो व्याख्यायन्ते-

गृध्द्याडारोऽश्नतो धूमो निन्दयोष्णहिमादि च ।
मिथो विरुध्दं संयोज्य दोष: संयोजनाह्वय: ॥ ३७ ॥

गृध्द्या-सुष्टु रोचयमिदमिष्टं मे यद्यन्यदपि भेयं तदा भद्रकं भवेत । इत्याहारेऽतिकामपट्येन । निन्दया- विरुपकमेतदनिष्अं ममेति जुगुप्सया । उष्णहिमादि-उष्णं शीतेन शीतं चोष्णेन । आदिशब्दाद् रुखं स्निगधेन स्निगधं च रुखेणेत्यादि । तथा आयुर्वेदोक्तं क्षीरामद्यपिन । संयोजय- आत्मना योजयित्वा । उक्तं च-

उक्त: संयाजनादोष: सवयं भक्तादियोजनात् ।
आहारोऽतिप्रमाणोऽस्ति प्रमाणगतदूषणम् ॥ [ ] ॥ ३७ ॥

मिश्र दोषको कहते हैं -

अप्रासुक मिट्टी, जल, जौ-गेहूँ आदि बीज, हरित पत्र-पुषप-फल आदिसे तथा जीवित दो इन्द्रिय आदि जीवोंसे मिश्रित जो आहार साधुको दिया जाता है वह मिश्र नामक महादोष है ॥ ३६ ॥

इस प्रकार भोजन सम्बन्धी दोषोंकी बतलाकर भुक्ति सम्बन्धी चार दोषोंका करनेकी इच्छासे पहले अंगार आदि तीन दोषोंको कहते हैं-

यह भोजन बडां स्वादिष्ट है, मुझे रुचिकर है, यदि कुछ और भी मिले तो बडा अच्छा हो इस प्रकार आहारमें अति लम्पटतासे भोजन करनेवाले साधुके अंगार नामक भुक्ति दोष होता है । यह भोज्य बडा खराब है, मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता, इस प्रकार ग्लानिपूर्वक भोजन करनेवाले साधुके धूम नामक भुक्ति दोष होता है । परस्परमें विरुध्द उष्ण, शीत, स्निग्ध, रुक्ष आदि पदाथोंको मिलाकर भोजन करनेसे संयोजना नामक भुक्ति दोष होता है ॥ ३७ ॥

विशेषार्थ- सुस्वादु आहारको अतिगृध्दिके साथ खानेको अंगार दोष और विरुप आहारको अरुचिपूर्वक खानेको धूम दोष कना है । इन दोषोंको अंगार और धूम नाम क्यों दयि गये, इसका स्पष्टीकरण पिण्डनिर्युक्तिमें बहुत सुन्दर किया है । लिखा है-जो ईंधन जलते हुए अंगारदशाको प्राप्त नहीं होता वह धूम सहित होता है और वही ईंधन जलनेपर अंगार हो जाता है । इसी तरह यहाँ भी

चारित्ररुपी ईंधन रागरुपी अग्निसे जलनेपर अंगार कहा जाता है । और द्वेषरुपी अग्निसे जलता हुआ चारित्ररुपी ईंधन धूम सहित

अथाहारमात्रं निर्दिश्यातिमात्रसंज्ञदोषमाह-

सव्यञ्जनाशनेन द्वौ पानेनैकमंशमुदरस्य ।
भृत्वाऽभतस्तुरीयो मात्रा तदतिक्रम: प्रमाणम: ॥ ३८ ॥

व्यञ्जनं-सूपशालनादि । तुरीय:- चतुर्थ: कुक्षिभाग: ।
उक्तं च -

अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशी पानेनैकंप्रपूरयेत् ।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ॥ [ ]

दोषत्वं चात्र स्वाध्यायावश्यकक्षति-निद्रालस्याद्युाभ्दववरादिव्याधिसंभवदर्शनात् ॥ ३८ ॥

होता है । इसी तरह-रागरुपी अग्निसे जलता हुआ साधु प्रासुक भी आहारको खाकर चारित्ररुप ईधनको शीघ्र ही जले हुए अंगारकेसमान करता है और द्वेषरुप अग्निसे जलता हुआ साधु अप्रीतिरुपी धूमसे युक्त चारित्रसरुपी इर्ंधनको तबलक जलाता है जबतक वह अंगारके समान नहीं होता । अत:रागसे ग्रसत मुनिका भोजन अंगार है क्योंकि वह चारित्र रुपी इंधनकेलिए अंगार तुल्य है । और द्वेषसे युक्त साधुका भोजन धूम है, क्योंकि वह भेजनकेप्रति निनदारत्मक कलुषभावरुप धूमसे मिश्रित है ॥ ३७ ॥

आगे आहारकेपरिमाणका निर्देश करकेअतिमात्र नामक दोषको कहते हैं -

साधुको उदरके दो भाग दाल शाक सहित भात आदिसे भरना चाहिए और उदरका एक भाग चजल आदि पेयसे भरना चाहिए । तिला चौथा भाग खाली रखना चाहिए । इसका उलंघन करनेपर प्रमाण नामक दोष होता है ॥ ३८ ॥

विशेषार्थ-आगममें भोजनकी मात्रा इस प्रकार कही है-पुरुषके आहारका प्रमाण बत्तीस ग्रास है ओर स्त्रीसके आहारका प्रमाण अट्ठाईस ग्रास है । तनेसे उनका पेट भर जाता है । इससे अधिकआहार करनेपर प्रमाण नामक दोष होता है । पिण्डनिर्युक्तिमें उदरके छह भाग किये हैं । उसका आधा अर्थात् तीन भग उदर तो व्यंजन सहित अन्नसे भरना चाहिए । दो भाग पानीसे और छठा भाग वायुक संचारके लिए खाली रखना चाहिए । ऊपर उदरके चार भाग करके एक चर्तुथांश उदरको खाली रखनेका विधन किया है । कालकी अपेक्षा इसमें परिर्वन करनेका विधान पिण्डनिर्युक्तिमें है । तीन काल हैं-शीत, उष्ण और साधारण । अति शीतकालमें पानीका एक भाग और भोजनके चार भाग कल्पनीय हैं । मध्यम शीतकालमें पानीकेदो भाग और तीन भाग भोजन ग्राह्य है । मध्यम उष्ण कालमें भी दासे भाग पानी और

तीन भग भोजन कल्पनीय है। अति उष्ण कालमें तीन भाग पानी और दोन भाग भोजन ग्राह्य है। सर्वत्र छठा भाग वायु संचारकेलिए रखना उचित है॥ ३८॥

अथ चतुद्रशमलानाह-

पूयास्त्रपास्थ्यजिनं नख३ कचमृतविकलत्रिकेकन्दः।
बीजं मूलफले कणकुण्डौ च मलाश्चतुर्दशान्नगताः॥ ३९॥

पूयं-व्रणक्लेदः। मृतविकत्रिकं निर्जीवद्वित्रिचतुरिन्द्रियत्रयम्। बीजं- प्ररोहयोग्यं यवादिकमिति टीकायम्, अडकुरितमिति टिप्पणके। कणः- यवगोधूमादीनां बहिरवयव इति टीकायाम्, तण्डुलादीनि टिप्पणके। कुण्डः- शाल्यादीनामीयनतरसूक्ष्मावयवा इति टीकायाम्, बाह्ये पक्वोऽभ्यनतरे चापक्व इति टिपपणके। एते चाष्टविधपिण्डशुध्दावपठिता इति पृथगुक्ताः। उक्तं च-

णह-रोम-जंतु अट्ठी-कण-कुंडय-पूय-चम्म-रुहिर-मंसाणि।
बीय-फल-कंद-मूला छिण्णाणि मला चउदसा हुंति॥ [मूलाचार ६/६४]॥ ३९॥

अथ पूयादिमालां महन्मध्याल्पदोषतवख्यापनार्थमाह-

पूयादिदोषे तयक्त्वापि तदश्नं विधिवच्चरेत्।
प्रायश्चित्तं नखे किंचित् केशादौ त्वन्नमुत्सृजेत्॥ ४०॥

त्यक्त्वापिइत्यादि। महादोषतवादित्यत्र हेतुः। किंचित्-त्यक्त्वाप्यन्नं प्रायश्चित्तं किंचिदल्पं कुर्यानमध्यमदोषत्वादित्यर्थः। अन्नमुत्सृजेतृ-न प्रायश्चित्तं चरेदपदोषत्वात्॥ ४०॥

अथ कन्दादिषट्कस्याहारात् पृथक्करणतत्तयागकरणत्वविधिमाह-

कनदादिषट्कंत्यागार्हमित्यन्नाद्वीाजेन्मुनिः।
न शक्यते विभक्तुं चेत् त्यज्यतां तर्हि भोजनम्॥ ४१॥

त्यागार्ह-परिहारयोगयम्। विभजेत्-कथमप्यनते संसक्तं ततः पृथक्कुय्रात्॥ ४१॥

इस प्रकार छियालीस पिण्ड दोषोंको कहकर उसकेचौदह मलोंको बताते हैं- पीव, रुधिर, मांस, हड्डी, चर्म, ख, केश, मरे हुए विलत्रय-दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, कन्द, सूरण आदि, बीज-उगनेयोगय

जौ वगैरह या अंकुरित जौ वगैरह, मूलीआदी वगैरह, फल-वेर वगैरह, कण--गेहूँ वगैरहका बाह्य भाग या चवल वगैरह, कुण्डधान वगेरहका आभ्यनतर सूक्ष्म अवयव, ये चौदह आहार सम्बन्धी हैं ॥ ३९ ॥

विशेषार्थ-भेजनके समय इनमें-से कुछ वस्तुओंका दर्शन या स्पर्शन होनेपर कुछके भोजनमें आ जानेपर आहार छोड दिया जाता है । आठ प्रकारकी पिण्ड शुध्दिमें इनका न होनेकसे अलगसे इनका कथन किया है ।

पीव आदि मलोंमें महान्, मध्यम और अलप दोष बतलाते हैं -

यदि खाया जानेवाला भोजन पीव, रुधिर, मांस, हड्डी और चर्मसे दूषित हुआ है यह महादोष है । अत: उस भोजन को छोड देनेपर भी प्राययिचत्त शास्त्रमें कहे गये विधनकेअनुसार प्रायश्चित्त हो चाहिए । तिथा नख दोषसे दूषित भोजनको तयाग देनेपर भी थोडा प्रायश्चित्त करना चाहिए । यह मध्यम दोष है । यदि भोजनमें केश या मरे हुए विकलेन्द्रिय जीव हों तो भोजन छोड देना चाहिए, प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह अल्प दोष है ॥ १४० ॥

कन्द आदि छह दोषोंको आहारसे अलग करनेकी या भोजनको ही त्यागनेकी विधि कहते हैं -

कन्द, मूल, फल, बिज, कण और कुण्ड ये छह त्याज्य हैं तथा इन्हे भोजनसे अग

अथ द्वात्रिंशतमनतरायान् व्याख्यातुमुपक्षिपति-

प्रायोऽनतराया: काकाद्या: सिध्दभक्तेरननतरम् ।
द्वात्रिंशद्व्याकृता: प्राच्यै: प्रामाण्या व्यवहारत: ॥ ४२ ॥

प्राय: । एतेनाभोज्यगृहप्रवेशादे: सिध्दभक्ते: प्रागप्नतरायत्वं भवतीति बोधयति । तथा द्वात्रिंशतोऽतिरिक्ता अप्यन्तराया यथाम्नायं भवनतीति च । व्याकृता:-व्याख्याता न सूत्रिता: । प्राच्यै:-टीकाकारादिभि: । उक्तं च मूलाचापरटीकायां (गा. ३४) स्थितिभोजनप्रकरणे-

न चैतेऽनतराया: सिध्दभक्तावकृतायां गृह्यनते सर्वदैव भोजनाभाव: स्यात् । न चैवं, यस्मात् सिध्दभक्ति यावनन करोति तावदुपविश्य पुनरुत्थाय भुंक्ते । मांसादीन् दृष्टा च रोदनादिश्रवणेन च उच्चारादीश्च कृत्वा भुंक्ते । न च तत्र काकादिपिण्डहरणं संभवति ॥ ४२ ॥

अथ काकाख्यलक्षणमाह-

काकश्वादिविडुत्सर्गो भोक्तुमन्यत्र यात्यध: ।
यतौ स्थिते वा काकाख्यो भोजनत्यागकारणम् ॥ ४३ ॥

काकेत्यादि । काकश्येन-शुनक-मार्जारादिविष्टापरिपतनमित्यर्थ: ॥ ४३ ॥

किया जा सकता है । अत: मुनि इन्हें भेजनसे अलग कर दे । यदि इन्हें भोजनसे अलग करनाशक्य न हो तो भोजन ही त्याग देना चाहिए ॥ ४१ ॥

बत्तीस अनतरायोंको कहते है-

पूर्व टीकाकारोंने प्राय: सिध्दभक्तिकेपश्चात् काक आदि बत्तीस अनतरायोंका व्याख्यान किया है। अत: मुनियोंको वृध्द परम्परासे आगत देश आदिकेव्यवहारको देकर उनहें प्रमाण मानना चाहिए ॥ ४२ ॥

विशेषार्थ-ग्रन्थकार कहते हैं कि भोजनकेअनतरायोंका मूल ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता। टीकाकार वगैरहने उनका किया है। तथा ये अनतराय सिध्द भक्ति करनेके बाद ही माने जाते हैं। मूलाचारकी टीकामें (गा. ३४) स्थिति भोजन प्रकरणमें कहा है-ये अनतराय सिध्द भक्ति यदि न की हो तो अन्य नहीं होते। यदि ऐसा हो तो सर्वदा ही भेजनका अभव हो जायेगा। किन्तु ऐसा नहीं है कयोकि जबतक साधु सिध्द भक्ति नहीं करता तब तक बैठकर और पुन: खउे होकर भोजन कर सकता है। मांस आदिको देखकर, रोनके शब्दका सुनकर मल-मूत्र आदिका तयग करके भेाजन करता है। प्राय: कहनेसे कोई-कारेर्ठ अन्ततराय सिध्द भक्ति करनेसे पहले भी होते हैं यह सूचित होता है। जैसे अभेज्य गृहप्रवेश अर्थात ऐसे घरमें प्रवेश जिसका भोजन ग्राह्यय नहीं है। यह भी एक अनतराय माना गया है। यद्यपि मूलाचारके पिण्डशुध्दि नामक अध्यायमें अनतरायोंका है फिर भी पृं आशाधरजीका यह कहना कि अनतरायोंका टीकाकार आदिने किया है, व्याकृता:- व्याख्याता, न सूत्रिता:। सूत्र्रनिाोंमें सूत्रिम नहीं है, चिनतनीय है कि उनके इस किनका वास्तविक अभिप्राय क्या है ? वैसे श्वेताम्बरीय पिण्डनिर्युक्तिमें, जिसे भद्रबाहु कृत माना जाता है, अन्तरायोंका नहीं है ॥ ४२ ॥

काक नामक नतरायका लक्षण कहते हैं--

किसी कारणसे सिध्द भक्ति करनेके स्थानसे भोजन करनेके लिए साधुके अन्यत्र जाने अथवा भेजनके लिए खडे होनेपर यदि काक, कुत्ता, बिल्ली आदि टट्टी कर देंत तो काक नामक अनतराय होता है और वह भाजनके तयागका कारण होता है ॥ ४३ ॥

अथामेध्यछदिरोधननाम्नस्त्रीनाह-

पोऽमेध्येन पादादेरमेध्यं दर्दिरात्मना।
छर्दनं रोधनं तु स्यान्मा भुडक्ष्वेति निषेधनम् ॥ ४४ ॥

अमेध्येन- अशुचिना। पादादे:- चरणजडघाकाचादिकस्य। निषेधनं- धरकादि ना भोजननिवारणम् ॥ ४४ ॥

अथ रुधिरारुपातजानवध३परामर्शाख्यांस्त्रीन श्लोकद्वयेनाह-

रुधिरं स्वान्यदेहाभ्यां वहतश्चतुरङगुलम्।
उपलम्भेऽस्त्रपूयादेररुपात: शुचात्मन: ॥ ४५ ॥
पाताऽरू णां मृतेऽन्यस्य क्कापि वाक्रन्दत: रुति:।
स्याज्जान्वध: परामशं: स्पर्शो हस्तेन जानवध: ॥ ४६ ॥

उपलम्भ: - दर्शनम्। शुचा- शोकेन्न च धूमादिना ॥ ४५ ॥

अन्यस्य- अन्यसनिनकृष्टष्टस्य ॥ ४६ ॥

अथ जानूपरिव्यतिक्रम-नाभ्यधोनिर्गमन-प्रतयाख्यासेवन-जनतुवध-नाम्नश्चतुरः श्लोकद्वयेनाह-

जानुदध्नतिरश्चीन-काष्ठाद्युपरिडघनम् ।
जानुव्यतिक्रमः कृत्वा निर्गमो नाभ्यधः शिरः ॥ ४७ ॥
नाभ्यधो निर्गमः प्रतयाख्यातसेवोज्झिताशनम् ।
स्वस्याग्रंऽन्येन पश्च्याक्षघाो जनतुवधे भवेत् ॥ ४८ ॥

आगे अमेध्य, छर्दि और अनतराय नामक तीन अनतरायोंको कहते हैं-

मार्गमें जाते हुए साधुकेपैर आदिमें विष्टा आकिग जानेसे अमेध्य नामका अन्तराय होता है । किसी कारणसे साधुको वमन हो जाये तो दर्दि नामका अनतराय होता है । आज भोजन मत करो इस प्रकार किसीकेरोकनेपर रोधन नामका अन्तराय होता है । अनतराय होनेपर भेजन त्याग देना होता है ॥ ४४ ॥

रुधिर, अरुपात और जानु अधः परामर्श इन तीन अनतरायोंको कहते हैं -

अपने या दूसरेके शरीरसे चपार अंगुल या उससे अधिक तक बहता हुआ रुधिर, पीव आदि देखनेपर साधुको रुधिर नामक अनतराय होता है । यदि रुधिरादि चार अंगुलसे कम बहता हो तो उसका दोना अनतराय नहीं है । शेकसे अपने आँसू गिरनेसे या किसी सम्बन्धकेमर जानेपर ऊँचे स्वरसे विलाप करते हुए किसी निकटवर्ती पुरुष या स्त्रीको सुननेवर भी अश्रुपात नामक अन्तराय होता है । यदि आँसू धुएँ आदिसे गिरे हों तो वह अश्रुपात अन्तराय नहीं है । सिध्द भक्ति करनेकेपश्चात् यदि साधुकेहाथसे अपने घुटनेकेनीचेकेभागका स्पर्श हो जाये तो जानु अधःस्पर्श नामक अतीचार होता है ॥ ४५-४६ ॥

जानूपरिव्यतिक्रम, नाभिअधेनिर्गमन, प्रत्याख्यातसेवन और जनतुवध नामक चार अतीचारोंको दो श्लोकांसे कहते हैं-

घुटने तक ऊँचे तथा मार्गाविरोधकेरुपमें तिरदे रुपसे स्थापित लकडी, पत्थर आदिकेऊपरसे लॉघकर जानेपर जानुव्यतिक्रम नामक अतीचार होता है । नाभिसे नीचे तक सिरको

तिरश्चीनं-तिर्यक्स्थापितम् । जानूव्यतिक्रमः- जानूपरिव्यतिक्रमाख्यः ॥ ४७ ॥
उज्झिताशनं-नियमितवस्तुसेवनम् ॥ ४८ ॥

अथ काकादिपिण्डहरणं पाणिपिण्डपतनं पाणिजन्तुवधं मांसादिदर्शनमुपसर्ग पाद्यनतरं पञ्चेन्द्रियगमनञ्च षट् त्रिभिः शेकैराह-

काकादिपिण्डहरणं काकगृद्धदिना करात् ।
पिण्डस्य हरणे ग्रासमात्रपातेऽश्नतः करात् ॥ ४९ ॥
स्यात्पाणिपिण्डपतनं पाणिजनतुवधः करे ।
स्वयमेत्य मृते जीवे मांसमद्यादिदर्शने ॥ ५० ॥
मांसादिदर्शनं देवाद्युपसर्गे तदाह्वयः ।

पादान्तरेण पञ्चाक्षगमे तन्नामकोऽश्नत: ॥ ५१ ॥

स्पष्टानि ॥ ५१ ॥

अथ भजनसंपातमुच्चारं च द्वावाह-

भूमौ भाजनसंपाते पारिवेषिकहस्तत: ।
तवाख्यो विघन उच्चारो विष्टाया: स्वस्य निर्गमे ॥ ५२ ॥

स्पष्टम् ॥ ५२ ॥

अथ प्रस्त्रवणमभोज्यगृहप्रवेशनं च द्वावाह-

नवाकर जानेपर साधुको नाभिअधोनिर्गम नामक अतीचार होता है । यदि साधु देव गुरुकी साक्षी पूर्वक छोडी हुई वस्तुको खो लेता है तो प्रत्याख्यात सेवा नामक अन्तराय होता है । यदि साधुके सामने बिलाव वगैरह पंचेनिद्रय चूहे आदिकी हत्या कर देता है तो अन्तुवध नामक अन्तराय होता है ॥ ४७- ४८ ॥

काकादि पिण्डहरण, पाणिपिण्डपतन, पाणिजनतुवध, मांसादि दर्शन, उपसर्ग और पादानतर पंचेद्रिय गमन नामक छह अतीचारोंको तीन श्लोकोंसे कहते हैं--

भोजन करते हुए साधुके हाथसे यदि कौआ, गृध्द वगैरह भेजन ले जाये तो काकादि पिण्डहरण नामक अन्तराय होता है । भोजन करते हुए साधुके हाथसे यदि ग्रास मात्र गिर जाये तो पाणिपिण्ण्डपतन नामक अन्तराय होता है । भोजन करते हुए साधुके हाथमें यदि कोई जीव आकर मर जावे तो पाणिजन्तुवध नामक अनतराय होता है । भोजन करते हुए साधुको यदि मद्या, मांस आदिका दर्शन हो जाये तो मांसादि दर्शन नामक अनतराय होता है । साधुके ऊपर देव, मनुष्य, तिर्यंचमें-से किसीके भी द्वारा उसपर होनेपर उपसर्गं नामक अनतराय होता है । भोजन करते हुए साधुके दोनों पैरोंके मध्यसे यदि कोई पंचेन्द्रिय जीव गमन करे तो पादानतर पंचेन्द्रियगमन नामक अनतराय होता है ॥ ४९-५१ ॥

भाजनसंपात और उच्चार नामक दो अनतरायोंको कहते हैं-

साधुके हस्तपुटमें जल आदि देनेवोके हाासे भूमिपर पात्रके गिरनेपर भाजनसंपात नामक अन्तराय होता है । तथा साधुके गुदाक्षरसे विष्टा निकल जानेपर उच्चार नामक अनतराय होता है ॥ ५२ ॥

प्रस्त्रवण और अभोजय गृहप्रवेश नामक अन्तरायोंको कहते हैं-

मूत्राख्यो मूत्रशुक्रादेश्चाण्डालादिनिकेतने ।
प्रवेशो भ्रमतो भिक्षोरभोज्यगृहवेशनम् ॥ ५३ ॥

शुक्रादे:-आदिशब्दादश्मर्यादेश्च । स्वस्य निर्गम इति वर्तते ॥ ५३ ॥

अथ पतनमुपेशनं संदंशं च त्रीनाह-

भूमौ मूर्छादिना पाते पतनाख्यो निषद्यया ।

उपवेशनसंज्ञोऽसौ संदंश: श्वादिदंशने ॥ ५४ ॥

स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

अथ भूमिसंस्पर्श निष्टीवनमुदरकृमिनिर्गमनमदतग्रहणं च चतुरो द्वाभ्यामाह-

भूस्पर्श: पाणिना भूमे: स्पर्शे निष्ठीवनाह्वय: ।

स्वेन क्षेपे कफादे: स्थादुदरक्रिमिनिर्गम: ॥ ५५ ॥

उभयद्वारत: कुक्षिक्रिमिनिगंमने सति ।

स्वयमेव ग्रहेऽन्नादेरदत्तग्रहणाह्वय: ॥ ५६ ॥

स्वेन-आत्मना न काशादिवशत: ॥ ५५ ॥ उभयद्वारत:- गुदेन मुखेन वा ॥ ५६ ॥

अथ प्रहारं ग्रामदाहं पादग्रहणं करग्रहणं च चतुरो द्वाभ्यामाह-

प्रहारोऽस्यादिना स्वस्य प्रहारे निकटस्य वा ।

ग्रहामदाहोऽग्निना दाहे ग्रामस्योद्धूतय कस्यचित् ॥ ५७ ॥

पादेन ग्रहणे पादग्रहणं पाणिना पुन: ।

हस्तग्रहणमादाने भुत्किविघ्नोऽनितमो मुने : ॥ ५८ ॥

उध्दृत्य-भूमेरत्क्षिप्य ॥ ५७ ॥ अन्तिम:-द्वात्रिंश: ।

यदि साधुके मूत्र, वीय आदि निकल जाये तो मूंत्र या प्रस्त्रवण नामक अतीचार होता है । भिक्षाके लिए घूमता हुआ साधु चाण्डा आदिके घरकमें यदि प्रवेश कर जाये तो अभोज्य गृहप्रवेश नामक अन्तराय होता है ॥ ५३ ॥

पतन, उपवेशन और संदेंश नामक अन्तरायोंको कहते हैं-

मूर्छा, चक्कर, थकान आदिके कारण साधुके भूमिपर गिर जानेपर पतन नामक अनतराय होता है । भूमिपर बैठ जानेपर उपवेशन नामक अनतराय होता है । और कुत्ता आदिके काटनेपर संदेंश नामक अंनतराय होता है ॥ ५४ ॥

भूमिसंस्पर्श, निष्ठीवन, उदरकृमिनिर्गमन और अदत्त ग्रहण नामक चार अनतरायोंको दो श्लोकोंसे कहते हैं-

साधुके हाथसे भूमिका स्पर्श हो जानेपर भूमिस्पर्श नामक अनतराय होता है । खाँसी आदिके बिना स्वयं कफ, थूक आदि फेंकनेपर निष्ठीवन नामक अनतराय होता है । मुख या गुदामार्गसे पेटसे कीडे निकलनेपर उदरकृमिनिगमन नामक अनतराय होता है । दाताके दिये बिना स्वयं ही भोजन, औषधि आदि ग्रहण करनेपर अदत्त ग्रहण नामक अनतराय होता है ॥ ५५-५६ ॥

प्रहार, ग्रामदाह, पादग्रहण और करग्रहण नामक चार अन्तरायोंको दो श्लोकोंसे कहते हैं-

स्वयं मुनिपर या निकटवर्ती किसी व्यक्तिपर तलवार आदिके द्वारा प्रहार होनेपर प्रहार नामक अन्तराय होता है। जिस ग्राममें मुनिका निवास हेा उस ग्रामकेआनसे जल

अथ सुखस्मृत्यर्थमुद्देशगाथा लिख्यनते

कागा मिज्णा छद्दी रोधण रुधिरं च अंसुवादं च।
जण्हूहेट्ठामरिसं जण्हुवरि वदिक्कमो चेव॥
णाहिअहोणिग्गमणं पच्चक्खिदसेवणय जंतुवहो।
कागादिपिण्उहरणं पाणीदो पिण्डपडणं च॥
पाणीए जंतुवहो मांसादीदंसणेय उवसग्गो।
पादंतर पंचिदियसंपादो भापणाणं च॥
उच्चारं पस्सवणमभोज्जगिह पवेसणं तहा पडणं।
उपवेसणं सदंसो भूमीसंफास-णिट्ठवणं॥
उदरक्किमिणिग्गमणं अदत्तगहणं पहार गामदाहो य।
पादेण किंचिगहणं करेण वा जं च भूमीदो॥
एदे अण्णे बहुगा कारणभूदा अभोजणस्सेह।
बीहण लोगदुगंध्छण संजमणिव्वेदणट्ठं च॥

[मूलाचार, गा. ४९५-५००]॥ ५८॥

अथार्याद्वयेन शेषं संगृह्ननाह-

तद्वच्चाण्डादिसपर्श: कलह: प्रियप्रधानमृती।
भीतिर्लोकजुगुप्सा सधमंसंन्यासपतनं च॥ ५९॥
सह्रसोपद्रवभवनं स्वभुक्तिभवने स्वमौनभडश्च।
संधननिर्वेदावपि बहवोऽनशनसय हेतवोऽन्येऽपि॥ ६०॥

भीति:- यत्किचिद्भयं पापभयं वा॥ ५९॥ अनशनस्य- भोजनवर्जनस्य॥ ६०॥

जानेपर ग्रामदाह नामक भेजनका अनतराय होता है। मुनिके खरा भूमिपर पडे रत्न, सुवर्ण आदिको पैरसे ग्रहण करनेपर पादग्रहण नामक अनतराय होता है। तथा हाथसे ग्रहण करनेपर हसतग्रहण नामक बत्तीसवॉं भोजनका अनतराय होता है। इन अनतरायोंके होनेपर मुनि भोजन ग्रहण नहीं करते॥ ५७-५८॥

इस प्रकार भेजनके बत्तीस अनतरायोंको कहकर दो पद्योंसे शेष अनतरायोंका भी ग्रहण करते हैं --

काकादि नामक बत्ीसअनतरायोंककी तरह चाण्डाल आदिका स्पर्श, लडाई-णगडा, प्रिय व्यक्तिककी मृत्यु या किसी प्रधान व्यक्तिकी मृत्यु, कोई भय या पापभय, होकनिन्दा, साधर्मीका संन्यासपूर्वक मरण, अपने भोजन करनेके मकानमें अचानक किसी उपद्रवका होना, भोजन करते समय अवश्य करणीय मौनका भंग, प्राणिरक्ष और इन्द्रिय दमनके लिए संयम पालन तिला संसार शरीर और भोगोंसे विरक्ति इसी तरह अन्य हुत-से कारण भोजन न करनेके होते हैं । अर्थात यदि राजभय या लोकनिनदा हेाती हो तो भी साधु भोजन नहीं करते । इसी तरह अपने संयमकी वृध्दि और वैराग्य भावके कारण भी भोजन छोड देते हैं ॥ ५९-६० ॥

इस ग्रकार अन्तरायका प्रकरण समाप्त होता है ।

अथहारकरणकारणान्याह-

क्षुच्छमं संयमं स्वान्यवैयावृत्यमसुस्थितिमृ ।
वाञ्छन्नावश्यकं ज्ञानध्यानादींश्चाहरेनमुनि: ॥ ६१ ॥

क्षुच्छमं-क्षुद्वेदनोपशमम् । ज्ञानं-स्वाध्याय: । आदिशब्देन खमादयो गृह्यनते । उक्तं च -

वेयणवेज्जावच्चे किरियुद्वारे य संजमट्ठाए ।
वतपाणधम्मचिंता कुज्जा एदेहि आहारं ॥ [मू. ४७९] ॥ ६१ ॥

अथ दयाक्षमादयो बुभुर्खास्य न स्युरित्युपदिशति-